



श्री वल्लभ स्मारक ग्रन्थमाला-२

निगूढ नायपुत्र

श्रमण भगवान् महावीर

तथा

मांसाहार परिहार

पण्डित होरालाल दूगड जन

आमुख

श्याम प्रभाकर-मुनि श्री पुण्यविजयजी

श्री आत्मानन्द जन महासभा पत्राय  
नमः सर्वज्ञ-ब्रह्मात्मैक्यं (पञ्चाव)

(सर्वाधिकार प्रकाशन द्वारा मुद्रित)

वीरनिर्वाण मठ ७६००  
प्रथमावृत्ति १०००

द्वितीयावृत्ति १०६४  
मूल्य—एक रुपया

प्रकाशक  
शान्तिप्रसाद अग्र  
श्री जनेन्द्र प्रेम बगला रोड,  
जवाहर नगर दिल्ली ६ ।



जिन्होंने साधु के फटोर घातों का पालन करते हुए भी  
 लोचसेवा के घटुत काम किये और अहिंसा के मूल तत्त्वों को  
 मानव जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये सतत प्रयास किया,  
 उन जगन्निमिर तरणि कल्पित कल्पतरु श्री श्री १००८  
 ६२० चनाचाव श्री विजयवल्लभ सूर्यवर की पवित्र स्मृति में

## प्राक्कथन

कभी-कभी रिना मान जाने वाले व्यक्ति भी कुछ ऐसे विचार व्यक्त कर डालते हैं जो सत्य तथा औचित्य की दृष्टि से सर्वथा अप्राप्त होते हैं। हम असत्य तथा अनुपयुक्त विचारों की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति का कारण चाहे बड़ा प्रष्ट हो अथवा सबद विषय की यथोचित जानकारी का अभाव परंतु ऐसे विचार विपला प्रभाव डालते हैं और उनका निराकरण आवश्यक बन जाता है।

श्री धर्मानन्द कौण्डवीजी ने अपनी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध' में धम्म निरामणि अहिंसा के अनन्य उपागम तथा प्रसारक भगवान् महावीर पर रागनिवृत्ति के लिए मासभक्षण का आरोप लगाया है। सर्वप्रमुख जनागमों में गिन जाने वाले श्री भगवती सूत्र के एक सूत्र को उल्टा होना आधार बनाया है।

भगवान् ने अपने एक मुनि शिष्य श्री सिंह को कहा कि 'तुम मत्स्य नगर में सठ गृहपति का भाया रेवता के घर जाओ और उनमें मज्जार बहाण कुटुम्बसाण (औषध रूप) ले आओ जो उन्होंने अपने लिए बना रखा है'। भगवत् वचन में प्रयुक्त इन शब्दों का विले द्वारा मारे गए मृगों का मांस ऐसा असंगत और अमभाव्य अर्थ करने कौण्डवीजी ने अनर्थ किया है।

हर भाषा में अनवधान गलत रहते हैं। दो शब्दों से मिलकर बन हुए शब्दों का अर्थ भी बहुत बार उन दोनों शब्दों के अर्थों से सर्वथा भिन्न होता है। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में तो विनापतया अनवधानता पाई जाती है। इसलिए विवेकशील विद्वान् किसी भी ग्रन्थ में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ या उनकी व्याख्या करते हुए इस बात का ध्यान रखना कि किस व्यक्ति ने किस किस स्थिति में किस निमित्त से किस प्रसंग पर और किसके संबंध में वह शब्द कहे।

कानून (विधि Statute Law) में प्रयुक्त गण्य कर अथ तथा उनकी व्याख्या करने में प्रसन्न प्रकरण और उद्देश्य आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिए यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालयों ने बार-बार किया है। जनांगम में इस चर्चिन् मूल की व्याख्या करने में उपयुक्त विद्वान्ता का तनिक भी ध्यान कौणावीजी ने रखा हाता ता वह एमा दुष्ट अथवा विवृत्त अथ न करने।  
दक्षिण —

भक्तान् मन्वाङ्—स्वयं अहिंसा व परमोपायक त्रिनक जीवन का अनवरत माध हा सर्वोपाय अहिंसा व मन्वभूतपु दया थी

श्री सिद्ध मुनि—सपूर्ण अहिंसा पच महाजन व धारक निग्रय धमण जा किमी भी प्राणा का मन-वचन-काया न कष्ट देना भा पाप समर्थ हैं। विनी मन्वित्त धन्नु का प्रयाग भी नहीं करते

रेवनी सटानी—श्रमणोपायिका श्राविका धम का मावधानी में पाग्ने बाग। प्राणुव जीवध्यान स तीवकर गात्र उपाजन करने बागी

सत्राण्या मन्वन्न राग—रक्तपित्त पित्तम्बर दाह तथा रक्ताविमार त्रिनक लिए मूर्गे का मास महा अपथ्य और मवया अनुपयुक्त

प्रयक्त गण्य—वनस्पति विनोय व निर्विवाङ् मूचक और उनस समार की हृष्ट औषध उवन रागा व लिए रामबाण।

हरयाङ् अनक दुष्टिकोणा म विचार करने पर स्पष्ट है कि कौणावी न न उलूख प्ररुणा की है।

ई विद्वाना में अपन-अपन ग्ग स कौणावीजी का धारणा को निराधार मिद्ध करने का प्रयास किया है। प० श्री हीरालालजी दूगर न पूर माधना व अभाव में भी इस विषय पर गहराई से अध्ययन तथा मनन किया है और सहा अथ का हर दुष्टि में स्पष्ट करने का सफल प्रयत्न किया है। कई विद्वाना न इनके इस उद्यम-जय विद्वत्तापूर्ण लेख को सराहा है। इसीलिए श्री आत्मानन् जन महासभा न इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया और पंडित हीरालालजी व महान् परिश्रम का सम्मानपूर्वक पुरस्ठित किया। वह पुरस्कार गत वष अथय तनीया का श्री हम्नितापुर

की पुनर्भूमि में महात्मता की आरंभ पद्धिती को भेद करने का मुक्त  
 श्रम प्राप्त हुआ था और उनका इस स्तब्ध प्रयास की सराहना उस अस्मिता  
 पर भी करने की थी।

उनका यह जो गुप्त रूप में विज्ञानों के विपरीत भाव में अवलोकन  
 का किए गए कर्म और का वैविध्य विषय की बहुमुखी व्याख्या और विज्ञान  
 के लिए का अस्मिता प्रयास का उनका समस्त कर्म में महात्मता ही अनुभव  
 करमा है। हम जानते हैं कि हमका अध्ययन करने मभी विज्ञानों की विज्ञानों  
 की सतृप्ति प्राप्त होगी।

एम १२८ कनाट सबस

नए शिल्ली १

मिनाक १० ५ ६४

विज्ञान

मानवस जन, ऐडवाइज

## ग्रामुर

प्रस्तुत पुस्तक में जन श्रमण और श्रावक वगैरे आचार का-विषय तथा अहिंसक आचार का मुख्य वर्णन किया गया है और उम आचार के साथ साथ भक्ति और व्रत का बार्ह भग्न है । यह यद्यपि वस्तु है—  
यथा प्रतिपादन किया गया है । इस अहिंसक आचार के प्रतिष्ठापक भगवान् महावीर की जीवनवर्षों का मुख्य में निष्ठा और कर दिया है । वह शान्ति-उत्पत्ति स्वयं आत्मा का प्रतिष्ठा अपने जीवन में किस प्रकार का था ? यह जानकर स्वयं माधु और गुरुमुख श्री आन अहिंसक आचार में अग्रसर हो और अहिंसा के पालन में कष्टमय का प्रस्था भी भगवान् के जीवन में लभ्य । एक पूरा प्रकरण भगवान् महावीर ने आगमा में योग और अहंत्वान का किस प्रकार निषेध किया है और शान्तिकाल की वैसा प्रतिष्ठा है—यथा वर्णन में है । इसमें आगमा में अनेक पाप के हिंसा अनुवाक कर यह सिद्ध किया है कि स्वयं भगवान् महावीर ने मात और व्रत का किस प्रकार निषेध किया है ।

अब मुख्य प्रश्न सामने है कि—यदि वस्तुस्थिति यह है तो आगमा में कुछ अपवाद के रूप में सामान्य समस्या पाठ आते हैं । उनका भगवान् महावीर ने उक्त अहिंसा के उत्पत्ति में किस प्रकार समझा है ? आज तो एक हजार वर्ष से भी पहले यही प्रश्न टाकाकाग के समय था और आज के आधुनिक युग में भी कई स्थानों में इस ओर जन विद्वानों का ध्यान दिया गया है । यह प्रश्न क्या परगानी तत्र करता है जबकि आज हम यह देखते हैं कि—जैन समाज में सामान्य समस्या व्यापक है और हर यह समझता है कि—वहीं अनास्थावाक लाग उन पाठों का आग करने सामान्य का मिलमिला पुन जागी न कर दें । यह समस्या जब आज के वगे पूर्वकाठ में भी थी ।



और अहिंसा व परम उत्तम व जीवन में मात्मान का मूल बल ही नहीं सकता है यह हमारा धारणा जस आज है वैन प्राचीनकाल में भी थी। यह भी एक प्रश्न बारबार सामने आता है कि जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने मांस खाया यदि उसी प्रकार भगवान् महावीर ने भी खाया तथा जिस प्रकार आज बौद्ध के अनुयायी मात्मान करते हैं उस प्रकार वभी वभी जन श्रमणों ने और गृहस्थों ने भी किया तो अहिंसा के आचार में भगवान् महावीर और उनके अनुयायी की इतरङ्गता ने क्या विशेषता रही ? ये और ऐसे अनेक प्रश्न अहिंसा में सम्पूर्ण निष्ठा रखने वाला व सामने आते हैं। अनेक उदाहरण कालानुमारी समाधान जरूरी है। पूजाचार्यों ने तो उन उन पाठों में उन पाठों का वनस्पतिपरक अर्थ भी हाता है ऐसा कहकर छुट्टी ले ली किन्तु इससे पूर्ण समाधान किसी व मन में हाता नहीं और प्रश्न बना ही रहता है। आधुनिक ज्ञान में जस त्याग की अपना भाग की आर हा सहज श्रुताव होता है तब ऐसे पाठ मानव मन का अहिंसा निष्ठा में विचलित करे और व त्याग की अपना भाग का भाग व मानव स्वाभाविक है। इन दृष्टि में उन पाठों का पुनर्विचार करना जरूरी है ऐसा नमस्कर भगवान् ने जो यह प्रयत्न किया है व सगहनीय और विचारणीय है।

अब न विविध प्रमाण देकर भगवान् प्रयत्न किया है कि—उन सभी पाठों में मांस का कोई सम्बन्ध हा नहीं है। अनेक काप और शास्त्रों से यह सिद्ध किया है कि उन पाठों का वनस्पतिपरक अर्थ किस प्रकार हाता है। इस परस्पर अस्मिन् विस्तारता की अहिंसा निष्ठा बढ़ होगी—इसमें सन्देह नहीं है और आपन करनेवालों के लिए भी नवी सामग्री उपलब्ध की गई है जो उन विचारों को बल भी सकती है। हम दृष्टि से लेखक ने महत् पुष्प की कमाई की है और एतदर्थ हम सभी अहिंसा निष्ठा रखनेवालों के वे पयसा व पात्र हैं।

—मुनि पुष्पविश्व

## थपनी वात

विहमा कं अहिमा म निष्ठा रक्खनवाज जन समाज म साधारण रूप स तथा जन समाज म विपक्ष रूप म मल्लदत्ता मचा दनवाजी भगवान् बुद्ध नामक पुस्तक भारत सरकार की साहित्य अकादमी द्वारा सन् १९५६ ईसवी म लिनी भाषा म प्रकाशित हुई । यह पुस्तक बौद्ध-ज्ञान क विद्वान् अध्यापक घमानन् कोणाम्बी लिपिन मराठी भाषा म बुद्ध चरित्र का अनुवाक है ।

यद्यपि मराठा 'बुद्ध चरित्र' पुस्तक कुछ वर्षों पहले छप चुका थी परन्तु 'नका प्रचार' महाराष्ट्र म वनिपय व्यक्तिया तक सीमित होने में जन समाज का 'म पुस्तक' मन्वर्षी विषय का पता न लगा । जब भारत सरकार म इसका अनुवाद हिन्दी गुजराती मराठी आसामी कन्नड़ी मल्याळम उर्दिया सिंधी तेलुगु तैमिळ तेलुगु और उर्दू इन ग्यारह भारतीय प्रमुख भाषाओं में अपनी साहित्य अकादमी द्वारा साथ एक साथ प्रकाशित करवाकर मध्यापी प्रचार प्रारम्भ किया तब जन समाज का ज्ञात हुआ कि इस पुस्तक म कण्ठा क प्रयत्न अवतार दीप तपस्वी महाधर्मग निगणठ नायपुत्त भगवान् बुद्धमान-महावीर स्वामी तथा निप्रय (जन) श्रमणा पर श्रमक महात्म्य न मास भक्षण का आरोप लगाया है जो सबका अनुचित है ।

अहिमा म निष्ठा रक्खनवाजे मानव समाज ने तथा विधाय रूप स जन समस्त समाज न सबत्र इस पुस्तक का विरोध किया । इस जल्ल करने क लिपि स्थान-स्थान पर समाए हुई प्रस्ताव पास किये गये तथा भारत सरकार का इस विषय में तार व अज्ञिया भेजी गयी । अनेक निष्ठ मठ भी माय्य अधिकारिया से मिल । अनक स्थाना में सनातन धर्मिया

का सभाओं ने भी इस पुस्तक के विरोध में प्रस्ताव पास कर योग्य अधि-  
कारियों को भेजे ।

इस आन्दोलन का परिणाम मात्र इतना ही हुआ कि उस पुस्तक  
नेमारा न छपवाने का तथा न प्रकाशित करनेवाला में मात्र सम्बन्धी  
प्रकरण के साथ जन विज्ञान के माध्यम का सूचित करनेवाला नोट  
लगवा देने का अवकाश न स्वीकार किया परन्तु यह वा विषय यह है कि  
इस पुस्तक का अत्यन्त भाषाओं में सचित्राचार प्रचार करने में आज भी  
घालू है ।

भारत एक घम प्रधान है मात्र इतना ही नहीं अपितु सत्य और  
अहिंसा की जन्म भूमि है । इस घम वसुधरा पर भारत की सर्वोच्च  
विभूति महान् अहिंसा वर्णा के प्रथम अवतार दीधितस्वी महाश्रमण  
निग्रथ नीयकर ( निगठ नायपुत्र ) भगवान् महावीर स्वामी (जन्म के  
चौबीसवें तीर्थकर) का जन्म हुआ । इसी पवित्र भारत भूमि में उन्होंने  
जगत् को सत्य अहिंसा अपरिग्रह तथा त्याग आदि सत्सिद्धान्तों को  
प्रदान किया । समस्त विश्व इस बात का स्वीकार करता है कि श्रमण  
भगवान् ब्रह्मान महावीर तथा उनके अनुयायी निग्रथ जन श्रमण मनसा  
वाचा-कर्मणा अहिंसा के प्रतिपादक थे और उनका अनुयायी श्रमण एवं  
श्रमणापामन आज तक इसके प्रतिपादक हैं ।

इस बात का भी स्वीकार १८८४ में मानि आर्य स ८० वर्ष पहले जन्म  
विज्ञान डाक्टर श्रमण अर्थात् न जन्म आधाराय मूल' के अपने अनुवा-  
म मूलगत मान आदि श्रमणा श्रमणा का यह अर्थ दिया था 'उम पर  
विज्ञान न श्रमण उद्धारार्थ किया था । अनन्त विज्ञान ने श्रमण जैसी  
के माध्या के श्रमण रूप पुस्तिका भी लिखी था जिसके परिणामस्वरूप  
डाक्टर जराय का अन्त मत परिवर्तन करना पड़ा । उन्होंने अपने १४०  
१०२/ स्वीकृत पत्र में अपनी भूत स्वीकार की । उम पत्र का उल्लेख  
हिन्दी आदि कानूनिए लिटरेचर आर्य जनाज' पृष्ठ ११७ ११८ में  
हीगाल गिबलार्थ कापडिया ने इस प्रकार किया है —]

There he has said that बहु अट्टिण ममण वा मच्छेण वा दण्डवत्तण' has been used in the metaphoncal sence as can be seen from the illustration of मन्तरीयवत् given by Patanjali in discussing a vartika of Panini ( III 3 9 ) and from Vachaspathi's com on Nyayasutra ( IV 1 ५४ ) he has concluded Thus meaning of the passage is there fore that a monk should not accept in alms any substance of which only of which only a part can be eaten and a greater part must be rejected

निकर मम जवावा क म स्पष्टीकरण क वा आम्ना क विद्वान् डावत् स्तन काना न अन्न मन् वा एव पर द्वारा इस प्रकार प्रमाण किया है जिसका जल्दी धर्म नाथ दिया जाना है —

जना क साम गान का बहु शिवालय दान का स्पष्टीकरण करके प्राप्तिर नवावा ने विज्ञान का बना हित दिया है । प्रत्यक्ष म म दान मम सभी स्वाकाय नहा लगा कि जिस धर्म में अहिंसा और शास्त्र का ज्ञान मन्वत्तण जग हा ममें साम गाना किया काल म भा धर्ममग्न माना जाता रहा होगा । प्राथम्य नवीनी का छोट-मा शिष्टता स सभी दान स्पष्ट हो जानी है । उम्मा चचा करने का प्रयास यह है कि मैं उनक स्पष्टीकरण की आर जितना समझ हा उन अधिक विद्वाना का ध्यान आकृष्ट करता जाना हू । पर निश्चय ही अभी भा एव लग हाग वा (जवावा क) पुगन मिद्वान पर हू रहेंग । मिथ्यादृष्टि म मुक्त हाता बना बटिन है पर अन्न में मग साथ की विजय हाता है ।

(भावाय विजयद्रमुनि कृत नाथकर महावाग भाग ३ पृ० १८१)

जवावा क वा इस ग्रन्थ का श्री गायक्याम जवावा पन्थ न तथा अध्यापक धर्मान् कौताम्बा न श्रमण भगवान् महावार का तथा निप्रथ (जने) श्रमणा का भासाहारा सिद्ध करन का उ माहग किया है । था गायक्याम जवावा पन्थ आज जीवित है पर अध्यापक धर्मान् कौताम्बी इस समार स विज्ञान चुके हैं । इन दाना न जनागमा क बूझाथ युक्त उन उत्पत्ती

को ममार के समस्त अयथाय रूप से प्रकट कर जो चर्चा उपस्थित की है उसका आज तक अन्त न हुआ जाया ।

यद्यपि अध्यापक श्रीगाम्भीर्यवादी भाषा तथा बौद्ध साहित्य के प्रसार विज्ञान मान जाते थे परन्तु अद्ध मागधी भाषा के तथा जन आचार विचार के पूरणताता न होने के कारण एवं गोपायनम भाइ पटेल भी इन विषया में जनमित्र हान के कारण (दाना न) जनगणना के कथित मूल्यांकन का गणन अध लगाकर निम्नलिखित श्रमण भगवान् महाशय तथा उनके अनुयायी निम्नलिखित श्रमण सभ पर प्राप्यम भगवत् मामाहार का निमूल आगे लगाया है । वास्तव में वान य ह कि जो भी कोई अहिंसा धर्म के अन्तर्गत मत्स्यायक प्रचारक विवक्तमल जगद्-धर्म शोध सपत्नी महाश्रमण भगवान् महावीर पर मामाहार का दापारापण करता है वह भगवान् महावीर का यथाभाष्य नन्ही समान मत्ता उनके वास्तविक पवित्र जीवन का नहां समझ पाया । यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति ऐसा अग्रस्त दुस्साहम पर गान-अपान भाव से मामाहार प्रचार का निमित्त बन जाते हैं । ऐसे निम्न आभेद का प्रतिवाद करना सत्य तथा अहिंसा के प्रमिया के लिये अनिवार्य हो जाता है । इसी बात का लक्ष्य में रखते हुए कई विद्वानों ने इन प्रतिवादा रूप कुछ लक्ष्य तथा पुस्तिकाओं लिखकर प्रकाशित का ।

फिर भी जिनासुजा के लिये इस विषय में विचार एवं सत्याजपूर्ण लक्ष्य की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी । अतः भारत के अनेक स्थानों से मित्रा तथा विद्यार्थी बंधुओं ने अपने-अपने द्वारा तथा साक्षान् रूप में मित्रवत् मुझे इस भगवान् बुद्ध के मामाहार प्रकरण के प्रतिवादा रूप 'साधु-आजपूर्ण' व्यक्ति पुस्तक जनगणना सम्मत तथा जन आचार विचार के अनुकूल निम्नलिखित का आग्रहमयी पुनः-पुनः प्रणाम का । इन निरन्तर की प्रेरणाओं ने मर मन में सुषुप्त इच्छाओं की बल प्रदान किया ।

विचार रूप से श्री रमणधरजी दूगड जन (पश्चिम पाकिस्तान से आये हुए) कानपुर निवासी ने इस विषय पर कुछ नोट लिख भेजे और भावना प्रकट की कि इस विषय पर एक सुन्दर निबंध तैयार किया जाय

इसमें मुझ विषय रूप से सक्रिय प्रेरणा तथा उमाहू मिला और मैं सकल्प बनन में गह्रायना मिला । मन उनमें से कुछ उपयोगी नाटम इस निबन्ध में स्वीकार किये हैं । अतः मैं उन सब प्रेरणाणां का आभारा ।

यह इस निबन्ध की ईसवी सन् १९५७ में अम्बाका पत्र पत्राव में प्रिन्सिपल प्रारम्भ किया और पूरे दो वर्ष के सतत परिश्रम के बाद ईसवी सन् १९५९ का निबन्ध तयार हुआ गया । मैं मन ईसवी १९६० को प्रिन्सिपल को भेजा ।

यह निबन्ध की तयार करने में कई वर्षों प्रशिक्षण और अगुवि धामा तथा साधन-सामग्री के अभाव के बाद मैं ही गुजरना पड़ा । यन्त्रेण प्रसारेण साधन सामग्री जुटाकर और सब सम्पत्ति का सामना करने हुए यह निबन्ध ईसवी सन् १९५९ में तयार होकर पूरे पांच वर्ष बाद आज सन् ईसा १९६६ में था आभासजन्य जन महासभा पत्राव द्वारा प्रकाशित हुआ आपके कर बमका तक पहुँच पाया है । आज का था यह जल्दी प्रकाशित हुना छिन्न 'मेयमि बन् विभानि' का कतिपय यहाँ भी प्रकाश नहीं ।

अब मेरी यह हार्दिक भावना है कि यह निबन्ध का अनेक भाषाभाषी में अनुवाद होकर विश्वभर में सबत्र प्रचार हो जिससे जन धर्म जन साधक जन आगमा जन मुनिया तथा जन गृहस्था पर लगाय गये नितान्त निष्ठा आस्था का निरमल होकर इसका सत्य और साम्प्रतिक स्वरूप मैं विश्व का मानव-समाज परिचित हो ।

अन्तिम प्रमाणानुभावा का इसमें सबत्र प्रचार के लिए इस निबन्ध की प्रकाशक सम्पत्ति का प्रोत्साहन दत्त रहना चाहिये ।

इस निबन्ध में यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि निगूढ नायपुत्र धर्मण भगवान् महावीर ने उमग तथा अपवात् विभी भी मूर्त में प्राण्यग मासाहार ग्रहण नहीं किया और न ही आप अपने मिदाल (आचार विचार) में अनुसार ऐसा अभ्यस्य पण्य ग्रहण कर सकते थे । उमग माग वह मिदाल है जो प्रधान माग है । महापुरुष के जीवन में हृमगा प्रदान माग का ही आचरण रहता है । उनक लिये देहाध्याम कोई साम वस्तु नहीं है ।

अतः वे अपने जीवन में किसी भी भाँ हालत में अपने लिये अपवात् माँग का आग्रह नहीं करें। इसका अर्थ यह है कि वे अपने जीवन में हिंसा आदि जिनमें हाँ मारा सी बात नहीं करत। अब प्राण्यग मांसादि का ग्रहण करना उनमें लिये असम्भव ही है इसलिये जना के पाँचवें आगम भगवत् सूत्र — विद्याभ्यासः सूत्रपाठः कर्मणां च प्राण्यग मानपरकं अर्थ करना जितना अनुचित और गलत है तथा अथवा भगवान् महावीर का जो रोग या जितने लिये जितना जिन आपस का मकर किया था यदि वे प्राण्यग मांस खाता तो वे प्राणघातक सिद्ध जाता। अतः जितना वनस्पतिशः में तयार है अथवा तो जितना वे आराम्य गम किया। वह औषध —

अथ से सहचारितं विजोरा ( जम्बीर ) फलं का पत्रं औषध रूप से ग्रहण किया था। क्योंकि इस औषध में रक्त पित्त आदि रोगों का नाश होता है पूरा लक्षण सिद्धांत है।

“मायं ज्ञातुं द्वारं मायं इमं सूत्रपाठं का अर्थ वनस्पतिपरक औषध रूप में सुत लिखकर जन विद्वाना ने भी स्वीकार किया है और इन औषध-ग्रन्थ की भूरि परिप्रामा का है। मात्र इतना ही नहीं अपितु यह भी बताया किया है कि भगवान् का इस औषध दान देने का प्रभाव से रक्तता नाशित न तावत्तर नाम-कर्म का उपाजन किया इसलिए औषध ग्रन्थ भाँ दत्ता आश्रित। अतः स्पष्ट है कि सुत लिखकर जन विद्वाना भी इस औषध का वनस्पतिपरक अर्थ में कोई मतभेद नहीं है। अतः इसा निबन्ध का पृष्ठ ७८।

अपितु क्या वे उल्लेख तथा भ्रान्तिपूर्ण ऐसा अनुचित प्रचार कर अति प्राचीनदाँ से चले आये जन धर्म के पवित्र और सत्य सिद्धान्तों का तोड़ मारकर अपने एक पवित्र मतिद्वान्ता का अज्ञान तथा द्वेष का मिथ्या प्रचार करने का मौका मिलता है। अतः कोई विद्वान् यदि किसी गलतपन्था का गिहार हाँ भी गया है तो उस इस बात को सत्य रूप में जानकर अपना भूल व लिये प्रनिवार तथा पश्चात्ताप करना ही उसकी सच्चा विद्वत्ता की कसौटी है।





समाज में मतोप नहीं हो सकता । तथा भाई गोपालदास जावाभाई अथवा जा कोई अन्य महानुभाव भी इसका अनुकरण कर रहे हों उनको भी वास्तविक अर्थ समझकर अपनी भूल का स्वीकार कर अपनी सरलता और सत्यप्रियता का परिचय देने हुए वास्तविक विद्वत्ता का परिचय देना चाहिये ।

भारत सरकार से भी हमारी प्रार्थना है कि जिस प्रकार Religious Leaders (धार्मिक नेता) नामक पुस्तक प्रकाशित होने पर अल्प मन्त्रियों की भावनाओं का आन्दर बरत हुआ उस खोज कर तथा 'सरिता' मासिक पत्रिका के जुलाई के अंक को खोज करके सत्य परायणता का परिचय लिया है वैसे ही अध्यापक धर्मानन्द कोशाम्बी कृत 'भगवान् बुद्ध' नामक पुस्तक के लिये भी कष्टम उठाये जिसमें अहिंसा प्रेमी जगत् के सामने सदा पाप का परिचय मिले ।

इस निवेदन का लिखन में त्रिजि घण्टी की सहायता ली गयी है उनकी सूची आगे दी है । उन सब प्रयत्नकर्त्ता का सम्मान धन्यवाद ।

इस निवेदन सम्बन्धी सब प्रकार की सम्मनितिया एवं सूचनाय मावे लिये पत्र से भेजकर अनग्रहीत करें ।

२/८२ रूपनगर  
दिल्ली ६

हरारामल दूगड  
व्यवस्थापन, जन प्राच्यप्रथ भंडार

## कृतज्ञता प्रकाश

अपने परमापकारा मुक्तव जनावाय स्व० श्रीमान् विजयवल्लभ मुरारीवरजी व देवलाक गमन व उपरान्त श्री आत्मानन् जन महासभा पत्राव अथवा समस्त पत्राव जन श्री मधन एक स्वर सं सङ्कल्प विद्या या वि गृह्येव व मित्रान की पूर्ति व लिए आवलम्ब स्मारक की स्थापना की जाए । स्मारक में अनेक प्रवर्तिया का आवाजिन है—गुरुवर श्रीमान् विजयानन् मुरारीवर व श्रीमान् विजयवल्लभ मुरारीवर का कलामक प्रतिमाए, हस्त निमित्त गास्त्रो का मण्डप व रणण पुस्तकालय ग्रन्थ प्रकाशन गाप काय कलाकला अनियिगृह आदि ।

स्मारक की स्थापना देखी में हागा । इन समय भण्डारा व घरा का भूत्रावरण हा रहा है । प० हागाजी डूगड यह उपयोग काम कर रहे हैं । माहिय प्रकाशन का आर भा वग उठाया गया है । आत्मा जीवन का प्रकाशन हा चुका है । मन्ना सान्ति भडन व सहायक स मानव और धर्म (एलक डा० इन्द्रचन्द्र गास्त्रा एम ए पी एच डी) भा प्रकाशन हा चुका है ।

प्रमृण पुस्तक एक महत्वपूर्ण विवादास्पद विषय पर लिखा गई । विद्वान् अथक व्याख्यान लिखकर विद्याभूषण प० हागाजी डूगड न्याय साथ पापमनीषा म्नाक न बगैर परिश्रम में इन तय्यार किया है । हम आता है कि विद्वान् इनका समचित अध्ययन कर प्रचलित शान्ति दूर कर हम अपनी सम्मति भर्जें । हम एसेक मन्त्राय आमूख अथक मुनिराज श्री पुष्पविजयजी तथा श्री ज्ञानगामजी एडवोकेट का हार्दिक आभार मानत हैं जिनके प्रयत्न व प्रेरणाभा में यह पुस्तक साहित्य जगत् के समस्त उपस्थित हा गयी है । अधिक महायका के भी हम कृतज्ञ हैं ।

जन् गृहि अष्टमा  
वि० २०२१

श्री आत्मानन् जन  
महासभा, पत्राव

# त्रिपयानुक्रमणिका

## प्रथम खण्ड

जन जापार विचार तथा निग्रय ज्ञानपुत्र श्रमण भगवान् महावीर

स्तम्भ न०	विषय	पृष्ठ
१—	जन अहिंसा का प्रभाव	३
२—	जा गृहस्था का आचार	१३
३—	निग्रय श्रमण का आचार	३२
४—	भगवान् महावीर स्वामी का त्यागमय जीवन	३७
५—	श्रमण भगवान् महावीर का मत्त्व ज्ञान	३२
६—	श्रमण भगवान् महावीर तथा अहिंसा	४५
७—	भगवान् महावीर के मासाहार सम्बन्धी विचार	४०
८—	जन मासाहार में भवधा अल्पित	४८
९—	तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निग्रयचर्या में मासभक्षण निषेध	५७
१०—	बौद्ध-जन सबान् में मासाहार निषेध	६२

## द्वितीय खण्ड

निग्रय नामपुत्र श्रमण भगवान् महावीर पर मासाहार के आश्रय का निराकरण

स्तम्भ न०	विषय	पृष्ठ
११—	महा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मासाहार के आरोप का निराकरण	६९

संस्कृत न०	भाग	विषय	पृष्ठ
११		१—विवादास्पद भूत-पाठ और उसका अर्थ व स्थिति जन विद्वाना का मन	७१
		२—इस औपनिषद् पर लिखित जना का मन —जन नीतिकर का आचार	७८ ७९
४		५—निग्रय धर्मण तथा निग्रय धर्मापासना का आचार	८५
		६—यस औपनिषद् का सार बनवाना औपनिषद् लानवाना औपनिषद् बनाना तथा बनवाना का जीवन-परिषय	८६
		७—मामाज्या प्रज्ञा में रहनेवाला जैन धर्माविज्ञानियों का जीवन-सम्भार तथा उसका प्रभाववाला प्रज्ञा में अन्य धर्माविज्ञानियों पर उसका प्रभाव	९७
		८—अथ तीर्थिका द्वारा जैन-धर्म सम्प्रदाय आलोचना में मामाज्या का आक्षेप का अभाव	९९
		९—न्यायगत गौतम बुद्ध का निग्रयधर्मियों का तत्पक्षपात में मामाज्या को प्रमाण न करने का वर्णन	१०२
		१०—धर्मण भगवान् महावीर का शरण तथा उसका स्थिति उपयुक्त औपनिषद्	१०४
		११—विवादास्पद प्रकरणवाला पाठ में ज्ञान वाले गान्धर्व व वास्तविक अर्थ	१०७
		विभाग १—मास गान्धर्व की उत्पत्ति का इतिहास	१०७
		२—मास का नामों में वृद्धि	१०८

सं०	नाम	विभाग	विषय	पृष्ठ
११			१—यनस्पयग मासादि	१०९
			४—मासादि गन्त व अग्नेजी बीजाकारो के अय	११२
			५—यतमान म मान जानेवाल प्राणी-वाच्य दाहने के तथा मास मत्स्यादि दाहना व अनेक अय	११२
			६—शङ्ख जा प्राणधारी और यनस्पति दाता व वाचक हैं	११५
			७—यतमानकाल म कुछ प्रचरित गन्त	११६
			८—शमण भगवान् महावीर और भग्याभग्य विचार	११७
			९—विवादास्पन् सूत्रपाठ (विचारणीय मूलपाठ)	१२२
			१०—कथाय क्या था	१२३
			११—मज्झार कण्ठ कुबुड ममए क्या था	१२७
			१२—विवादास्पन् सूत्रपाठ का वास्तविक अर्थ	१४५

ततोय चद

उपसहार

१४९

## साधन ग्रन्थों की नामावली

- १ अथर्वण महिता
- २ अथर्वण (वैदिक)
- ३ अथर्वण नित्य (महीपट्ट)
- ४ अथर्वण मग्न
- ५ अथर्वण
- ६ अथर्वण मग्न
- ७ अथर्वण वचन (गर्वण दाजीपट्ट कृत)
- ८ उपनिषद् भाष्य वारा
- ९ अथर्वण महिता
- १० अथर्वण
- ११ गृह्यसूत्र
- १२ अथर्वण महिता
- अथर्वण महिता
- १३ अथर्वण चिन्तामणि वारा (हमचन्द्र)
- १४ अथर्वण-आचार्य
- १५ अथर्वण-सूत्रकृता
- १६ अथर्वण स्थानाग
- १७ अथर्वण स्थानाग सूत्र टीका
- १८ अथर्वण भगवती सूत्र
- १९ अथर्वण भगवती सूत्र टीका
- २० अथर्वण भगवती सूत्र
- २१ अथर्वण भगवती सूत्र

- २० आगम अत्रवृत्तशास्त्र सूत्र  
 २१ आगम प्रज्ञा व्याख्यान सूत्र  
 २४ आगम विधान सूत्र  
 २५ आगम प्रज्ञापना सूत्र  
 ६ आगम कल्प सूत्र  
 २ आगम शास्त्राधिक सूत्र  
 २८ आगम उत्तमोपनिषद् सूत्र  
 २९ आगम अनुयोगशास्त्र सूत्र  
 ३० जन चरित माता (निगम्वर)  
 ३१ जन सत्य प्रज्ञा (मासिक)  
 ३२ तत्त्वज्ञ सूत्र  
 ३३ निष्कुरल प्रज्ञावता (निगम्वर)  
 ३४ निष्पटि शास्त्रा पुरुष चरित (हेमचन्द्र)  
 ३५ धर्म निष्ठु (हरिभक्त)  
 ३६ धर्म रत्न वक्त्र (वदमान सूरि)  
 ३७ निष्पटु गङ्गा (हेमचन्द्र)  
 ३८ महावीर चरित प्राकृत (नमिचन्द्र सूरि)  
 ३९ महावीर चरित प्राकृत (गुणचन्द्र सूरि)  
 ४० भाग्यशास्त्र (हमचन्द्र)  
 ४१ आद्य गुण विवरण  
 ४२ पञ्च प्राकृत (हमचन्द्र)  
 ४३ सरोज प्रवर्ण  
 ४४ सदाय सन्ततिता  
 ४५ जन पद्मपत्रिका  
 निष्पटु शीत  
 ४६ नानाध रत्नमाता  
 ४७ निष्पटु (कथम्ब)

- ४८ निघण्टु भावप्रकाश  
 ४९ निघण्टु मन्त्रपाल  
 ५० निघण्टु रत्नाकर  
 ५१ निघण्टु राज  
 ५ निघण्टु राजवल्लभ  
 ५२ निघण्टु वचक उद्गू भाषा में (कृष्ण व्यास)  
 ५३ निघण्टु गान्धिम  
 ५ निघण्टु गण  
 ५६ निघण्टु भाष्य (आचार्य धाम्य)  
 ५७ पाद रूपण  
 बौद्ध साहित्य  
 ५८ भगवत् निवाय  
 ५९ छन्द वधा  
 ६० पावननाथ का चानुयाध धर्म (धर्मानन्द बीणावी)  
 ६१ वधा  
 ६२ बौद्ध-ज्ञान (राहु-माह-यायन)  
 ६३ भगवान् वद्ध (धर्मानन्द बीणावी)  
 ६४ मन्त्रिम निवाय  
 ६५ मन्त्रि विम्वर  
 अथ वय  
 ६६ धर्मगिष  
 ६७ वन्मस्त्रतामिधान (वाचस्पति)  
 ६८ वन्मस्त्रतामिधान  
 ६९ वज्रयन्त्र  
 ७० वचक गन् मिधु  
 ७१ >



- ७२ हिली विश्वकोश  
७३ ऐतरेय ब्राह्मण  
७४ पद्म-परिभाषा

# ENGLISH BOOKS

- 75 Sanskrit English Dictionary (Apte)  
76 English Dictionary (J Ogilvie)  
77 Sanskrit English Dictionary (Monier Monier-Williams)  
78 A. S. D. 1868 N/85  
79 Mr Gate report  
80 Hinduism (Prof D C Sharma)

## जडरण

- १ डा० राधा विनाद पाल  
२ मि मलाली  
३ महारमा मोहनदास कमचन्द गाथा  
४ मि एव कूप नैड  
५ मि धगलर  
६ कनल डल्टन  
७ लोवमान्य बालगगाधर तिलक  
८ अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर  
९ डा हमन जवोवी  
१० डा स्टन कोनो

## प्रथम खण्ड

जैन आचार-विचार तथा निष्प्रय ज्ञातपुत्र  
श्रमण भगवान् महावीर



## जैन अहिंसा का प्रभाव

जन अहिंसा के बारे में कौन नहीं जानता ? जन धर्म का प्रत्येक आधार विचार का समुदायी अहिंसा ही है। जन धर्म की इसी विपत्ति के कारण विश्व का अर्थ कोई भी धर्म इस का समानता नहीं कर सकता। आज भी जना के अहिंसा मयम, तप का पालन तथा भक्ति-मांसादि का त्याग मारे तत्सार में प्रसिद्ध हैं। इसी लिये यह धर्म दया धर्म के नाम से आज भी जगदविख्यात है। इसकी अलौकिक अहिंसा का दम्बर आज के विज्ञान विद्वान भ्रम मुक्त हो जाते हैं। डा० राधा विनाल पाल  
Ex judge International Tribunal for trying the Japanese War Criminals ने अपने अभिप्राय में कहा है—

If any body has any right to receive and welcome the delegates to any Pacifists Conference it is the Jain Community. The principle of Ahimsa which alone can secure World Peace has indeed been the special contribution to the cause of human development by the Jain Tirthankaras and who else would have the right to talk of World Peace than the followers of the great Sages Lord Parshvanath and Lord Mahavira ?

—( Dr Radha Vinod Paul )

अर्थात्—विश्वान्ति मस्थापन समा के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने का अधिकार केवल जना का ही है क्योंकि अहिंसा ही विश्वान्ति का साम्राज्य पदा कर सकती है और एसी अनाधी अहिंसा की भेंट अंग्रेजों-जो जन धर्म के प्रस्थापक तीर्थकरो न हा की है। ईन्ने लिये

विश्वनाथि का आवाज प्रभु श्री पञ्चनाथ और प्रभु श्री महावीर के अनुयायियों के अनिरविरत दूसरा कौन कर सकता है ?

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भा निश्चित है कि महावीर स्वामी का नाम किसी भी मिडाल्ट के जिय यन्त्रि पूजा गाना है तो वह अहिंसा ही है। प्रत्येक धर्म की महत्ता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा का तत्त्व कितने प्रमाण में है। और इस तत्त्व का यन्त्रि किसी न अधिब-मे-अधिब विवक्षित किया है सा यह भगवान महावीर ही थे।<sup>१</sup>

भगवान महात्मा ही अथवा कोई भी जैन तीर्थंकर हुआ न तो वे स्वयं ही गरिमा-मायादि का प्रयोग करने हैं और न ही उनके अनुयायी यहाँ तक कि का धर्म पर विश्वास रखने वाले गृहस्थ भी, जो किसी तरह का व्रत नियम या प्रतिज्ञा का ग्रहण नहीं करते अर्थात् श्रावक के व्रतों को भी ग्रहण नहीं करने मान्य भविरात्रि अभिषेक पण्यों से हमारा दूर रहते आ रहे हैं। भगवान महावीर आदि जैन तीर्थंकरों के मांगानाहार निरोध का सविनय परिचायक सबूत (प्रमाण) इसमें अभिषेक बना ही सकता है।<sup>१</sup>

निग्रथ श्रमण जन नापु तो छ काया के जीवों की हिंसा में बंधते हैं। व प्रमकाय के जीवों का आरम्भ (हिंसा) नहीं करते सचित्त फल फूल, सम्झी आदि का भक्षण नहीं करते। अग्निकाय का आरम्भ नहीं करते। सचित्त जल का उपयोग नहीं करते। बठना या खड़े होना हा तो रजोहरण (ऊनात्रि नरम वस्तु का एक गुच्छा जिससे स्थान साफ करन पर जीवात्रि की हिंसा का बचाव होता है) से स्थानात्रि का प्रमाजन (साफ-सूफ) करके बठन उठन चलन सति हैं ताकि किसी सूक्ष्म जीव की भी हिंसा न हो जावे। पृथ्वी का न स्वयं खोन्ते हैं न दूसरा से खुदवाते हैं। वायुकाय (वायु के जीवों) की हिंसा से बचन के लिए न खा चलाते हैं न

१ भगवान महावीर तथा उनके अनुयायी निग्रथ श्रमण एवं श्रमणा-पापकों के आचार सम्बन्धी विनय स्पष्टीकरण अगल स्तम्भों में करेंगे।

दूसरा मे चलवाते हैं । रात्रि भोजन भी नहीं करते क्योंकि इससे प्रायः तम जीवा का हिंसा होती है तथा भोजन के साथ तम जीवा के पेट में घले जान से मामगमन का दोष भी समब है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि समस्त जन तावकरा—भगवान् महावीर आदि—न अपने अनुयायी जन मुनिया के लिये स्थूल में लेकर मूदम हिंसा से वचन के लिये तथा अहिंसापालन के प्रति कितना जागरूक रहने का आग्रह दिया है । जिसके फलस्वरूप आज तक जन माधु-माध्वी मध स्थूल में लेकर मूदम-से-मूदम अहिंसा का पालन करने में मग्न जागरूक चला आ रहा है । यह बात आज भी समार प्रत्यक्ष देख रहा है ।

प्राणी मात्र के रूप में सर्वत्र भगवान् महावीर जीव का स्वरूप जानते थे । उन्होंने बतलाया कि मानव जब तक अपनी मूदम अहिंसा का पालन नहीं करता तब तक बटु निर्वाण (मार्ग) प्राप्ति में समर्थ नहीं हो सकता । शान्त मुख प्राप्त करने का अहिंसा का पूरा पालन को छोड़कर अथ साधन ही हो नहीं सकता । इसी वजह से वीतराग-मर्त्य भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट आगमा का प्रधान विषय अहिंसा ही है । जो धमनिर्णायक तीर्थंकर यहाँ तक मूदम रूप में जीवा की हिंसा से स्वयं बचते हैं और दूसरा के लिये वचन का विधान करने हैं उन पर माम-भग्न का आरोप लगाना वहाँ तक उचित है ? इसके लिये सुन पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं ।

अहिंसा के विषय में कण्ठासागर वीतराग सब्र भगवान् महावीर ने यह स्वयं प्रकट किया है —

“सरवे पाणा पिपाउया, सुहसाया बुरुपडिक्खता,  
अल्पियवहा पियजोविणो जाविउजामा पातिवाएज्ज कचण”

(आचारान्ध्र १ अ० २ उ० ३)

अर्थात्—सब प्राणियों का आयुष्य प्रिय है, सब सुख के अमिलायी हैं, दुःख सब को प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है जीवन सभी को प्रिय है सभी को हैं । स लिये किसी को मारना या बध देना

अहिंसा धर्म की इतनी महिमा सतारक अन्य किसी धर्म में नहीं पायी जाती। कितना सुन्दर विचार है—

“स्थूल से लेकर सूक्ष्म सब जीवों को अपने समान समझो और किसी को कष्ट मत पहुँचाओ अपने में सबको देखो।”

इसमें यह स्पष्ट है कि महाश्रमण भगवान् महावीर की भावना प्राणी-मात्र की रक्षा के लिये कितनी उत्कट थी। यह सामान्य मित्रानुजो ने अब तक धटूट बना रहा है। जन-मुनि—मनुष्य पशु पक्षी कीट, पक्ष आदि जन जीवा तथा पश्वों जल अग्नि वायु और वनस्पति स्थावर जीवा की हिंसा मन-वचन-काया से न तो स्वयं करते हैं न दूसरों से करवाने हैं और न करनेवाले का अनुमोदन (प्रशंसा) ही करते हैं। जब कोई गृहस्थ जन मुनि का दीक्षा ग्रहण करता है तब उसे सब प्रथम प्राणातिपात-विरमण नामक महाव्रत का अंगीकार करना पड़ता है जिस के पालन वह अपने जीवन पयम पूरी दृढ़ता के साथ करता है। मारण यह है कि निग्रय श्रमण छाट-म-छाट जंतु से लेकर मनुष्य पर्यंत किसी भी प्राणी की हिंसा न तो स्वयं करता है और न दूसरों का ऐसा करने का उपदेश देता है तथा न ही ऐसा करने वाले को अच्छा समझता है। माधु की अहिंसा का स्वरूप आगे चलकर हम साधु के आधार में लियेंगे।

वरणावत्सल महाश्रमण सब-सबदर्शी भगवान् महावीर स्वामी ने इस उपयुक्त प्रकार की अहिंसा का विषयके जनसमाज को मात्र उपदेश ही नहीं दिया था किन्तु अमरसंज होकर उसे अपने जीवन में भी उतारा था। निगण्ठ नागपुत्र<sup>१</sup> (भगवान् महावीर स्वामी) ने गृहस्थावस्था को त्यागकर मुनि अवस्था धारण करने के बाद तो इस सिद्धान्त को पूर्णरूपण अपने जीवन में आत्मसात् किया ही था किन्तु जब आप गृहस्थावस्था में

१ बौद्ध ग्रंथों में श्रमण भगवान् महावीर का निगण्ठ नागपुत्र के नाम से उल्लेख हुआ है किन्तु जनामगो में निम्बण्ठ नागपुत्र नाम आता है। हम ने इस निबन्ध में जन आगमों के अनुसार सबब निरर्थक शतपुत्र लिखा है।

ये तभी से आपने सचित्त पशुओं का सेवन करना छोड़ दिया था। यह बात जनागमा के अम्माजी से छिपी नहीं है।

जन धमनिष्ठ गृहस्थ जिन्हें धावक बयबा धमणाधामक कहते हैं वे भी माम खान में से था परदेख करतें हैं। मास दानना हा नहा परल्लु रात्रिभाजन का भवन भी सी स्थि नहा करतें कि इस भोजन के मास धम जीवा का पेट में चले जाता समव है। इस स्थि मामाहार का दाप भी लग सकता है। जब कोई भी व्यक्ति जन धम स्वाकार करता है तब उस धामन के घरह घरों में से भयप्रथम 'स्थू' प्राणातिशान्तिरमण घत' ग्रहण करना पड़ता है जिसका प्रयोजन यहा है कि उस (हृन्-चलन की क्षमता वाले) जीवा की हिमा का त्याग और स्थावर (स्थिर) जीवा की निमा की यतना। मास उस जाना को मारन से बनता है जब धावक के लिये भस जावा की हिमा का त्याग है तब वह मास का कसे ग्रहण कर सकता है? आज भी जन गृहस्थ, जिह कि जन धम पर धडा है ये कल्पि मांस भक्षण नहा करते। इस कारण से आज भी यह बात जगन्प्रसिद्ध है कि यदि कोई व्यक्ति मांसभक्षण तथा रात्रिभाजन न करना हा तो लग उस पुरत कह दन हैं— यह व्यक्ति जनधर्मानुयायी है।

यह तो हुई भगवान महावीर निग्रय धनि तथा जन गृहस्था की बात। परल्लु आप यह जान के आश्चर्यचकित हाग कि जो जानिया बिगी ममम में जन धम का पालन करती था बिल्लु उनके ज्ञानान्तिवों से जन धमणा का उनके प्रदना में आवागमन न होन से वे अय धमविलम्बिया के प्रचारकों के प्रभाव से जन धम को भूल कर अय धम-संश्रया की अनवायी बन चुकी हैं और उन्हें इस बात का ज्ञान है कि उनके पूजक जन धमानुयायी ये वे आज तक भी मांस भक्षण तथा रात्रिभाजन और अभय वस्तुआ का भक्षण नहीं करती। जिनसे ये यहा एक एगो जानि का परिचय देने से हमारी इस धारणा को पुष्टि मिलेगी।

बगल देग में जहा आज भी मास मत्स्यादिभक्षण का मूल प्रसार है वही सबत्र लामो की संस्था में एक एसी मानव जानि



जो सराक व नाम में प्रसिद्ध है। सराक शब्द "सरावक-श्रावक" का अपभ्रंश होकर बना है। य लोग कृषि कपड़ा बनाने तथा दुकानदारी आदि का व्यवसाय करने हैं। य लोग उन प्राचीन जन श्रावकों के वंशज हैं जो जन जाति व अवशेष रूप हैं। यह जाति आज प्रायः हिंदू धर्म का अनुयायी हो गई है। बड़ा-बड़ा अभी तक य लोग अपने आपका जन समझते हैं। इस जाति के विषय में अनेक पाश्चात्य तथा पौर्याय विद्वानों ने उल्लेख किया है। निम्नोक्त परिचय इस प्रकार है।

१ मि० गेट अपनी सैंसर्स रिपोर्ट में लिखते हैं कि —

इन नेपाल देश में एक साम सरह के लोग रहते हैं। जिनका सराक कहते हैं। इनकी संख्या बहुत है। य लोग मूल में जन थे, तथा इन्हीं की उत्पत्त्या अब इनके पड़ोसी भूमिजों की उत्पत्त्या से मालूम होता है कि—य एक ऐसी जाति की सन्तान हैं जो भूमिजों के आने के समय से भी पहले बहुत प्राचीन काल में यहाँ बसी हुई है। इनके बड़ों ने पार छर्रा बोरा और भूमिजों आदि जातियों के पहले अनेक स्थानों पर भस्त्रि बनवाये थे। यह अब भी सदा से ही एक शान्तिमयी जाति है जो भूमिजों के साथ बहुत मेल-जोल से रहती है। बनार डल्टन के मतानुसार य जन हैं और ईसा पूर्व छठी शताब्दी (Sixth Century B C) से ये लोग यहाँ आबाद हैं।

यह शब्द सराक निःसन्देह "श्रावक" से ही निकला है जिस का अर्थ संन्यास में मुनन वाला होता है। जना में यह शब्द गृहस्थों के लिये आता है जो जीवन व्यवसाय करते हैं और जो पति या साधु से भिन्न हैं।

(मि० गेट सैंसर्स रिपोर्ट)

१ जनानामों में श्रावक शब्द गृहस्थ व्रतधारी जना के लिये आया है परंतु बौद्धों ने श्रावक शब्द बौद्ध भिक्षुओं के लिये प्रयोग किया है। 'सराक' जो कि श्रावक शब्द का अपभ्रंश है यह गृहस्था की जाति के लिये प्रसिद्ध है। इसलिए यह जाति जन गृहस्थ-धर्मगोत्रासनों का अवगाप है इसमें शन्देह नहीं है।

२ मि० सरसली कहते ह कि—

यद्यपि मानसूम व 'मराक' अब हिंदू हैं परन्तु वे अपने का प्राचीन बात म जन हान की बात को जानत हैं। वे पक्के गाकाहारी हैं मात्र इतना हा नहीं परन्तु वाग्म व गब्द का भी वे व्यवहार म नहा लाते।

३ मि० एष्वरूष लड का मत ह कि—

मराक' लग हिमा से घना करत हैं। शिकार खाना अच्छा समझते हैं। सूर्योदय बिना भोजन नहीं करत। गूलर आदि कीड वाग्म फलों का भी नहीं खात। श्री पारश्वनाथ (जनों के ठईमर्वे तीयकर) को पूजत हैं और उन्हें अपना कुम्भेवना मानते हैं। इनके गृहस्थाचार भी मराकों की तरह क्वापि रात्रिभोजनादि नहीं करते। इनम गव कहावन भी प्रसिद्ध है—

“डाह डूमर (गूलर) पीछी छाती ए चार नहीं लाये सराक जाति।”<sup>१</sup>

४ A S B 1868 N/85 में लिखा ह कि —

*They are represented as having great scruples against taking life They must not eat till they have seen the sun (before sunrise) and they venerate Parashvanath.*

अर्थात्—व (मराक) एम गंगा के अनयायी हैं जो जावहत्या रूप हिंसा म अत्यन्त घृणा करत हैं और व सूर्योदय होने से पहले क्वापि नहीं खान तथा व श्री पारश्वनाथ के पूजक हैं।

५ मि० बेगलर व बनल डलटन का मत ह कि —

ब्राह्मणों व उनके मानने वालों न ईसा की मानवा सतायी के बाद उन थावका को अपन प्रभाव से दबा लिया। जा कुछ बचे और उनके घम से नहा गय व इन स्थाना मे दूर जाकर रहे।

१ इन सब बातों का सुलासा थावक के सात्व 'भोगोपभोग-परिमाण प्रत्यक्ष' अंग स्तम्भ म करेंगे। और बतलायगे कि प्रकृति नियमा का पालन अनिवार्य होता है।

(६) यह बात बड़ गौरव की है कि जिस जाति को जाघम भूले हुए आज तरह से बच हा गया हैं उनके बगल आज तक बगल से मासाहारी दश म रहते हुए भी बहुत निरामियाहारी हैं। इस जाति में मत्स्य तथा मास का व्यवहार सबका काम है। यहाँ तक कि बालक भी मत्स्य या मास नंगे हात। मासाहारी आर हिमालय के मध्य म रहते हुए भी ये लोग पूर्ण अहिंसक तथा निरामियमोदी हैं।

■ इनसे डेलटन का मत है कि —

इस जाति को यह अभिमान है कि इस म कोई भी व्यक्ति किसी फौजदारी अपराध म दंडित नहीं हुआ। और अब भी मभव है कि इस जाति म अभिमान है कि इस ब्रिटिश राज्य म भी किसी का अब तक कोई फौजदारी अपराध पर दंड नहीं मिला। ये वास्तव म शास और नियम म चलन वाले हैं। अपने आप जोर पड़ीमिया के साथ शांति से रहते हैं। ये लोग बहुत प्रतिष्ठित तथा घदिमान मालूम होते हैं।

(८) उनका जन मन्दिर और जन मीथरंग मणधरों निग्रयो भावन, श्राविकाओं की मूर्तियाँ आज भी इस दंग म सबत्र इधर उधर बिखरी पड़ी हैं। जा कि 'सराव' लामा के द्वारा निर्मित तथा प्रतिष्ठित कराई गयो हैं। (A S B 1868)

सारांश यह है कि हजारों वर्षों म अपने मूल धम (जन धम) को मूल जान पर भी और अन्य मासाहारी धम-संप्रदायों म मिल जान के बाद भी इन सरावों म जन धम के आचार सम्बन्धी अनक बिगडनाएँ आज भी बिद्यमान हैं।

इस सारे विवरण से यह बात स्पष्ट है कि जन धम निर्यामक निग्रय पाहपुत्र मगवान् महावीर जाति तीथवरो ने अहिंसा का ऐसा अलोकिव आत्म स्वयं अपने आचरण म लाकर विश्व के लोगो को इस पर चलने का आदेश दिया जिसके परिणाम स्वरूप जिहोन उन आत्म का स्वीकार किया ऐसा जा सभ (साधु-साध्वी, आचक-श्राविका)

आज के बद और दूषित वातावरण (जिमम मांस-मत्स्य तथा मन्त्रि जसी घणित वस्तुओं का विश्वव्यापी प्रचार हो रहा है) में भी अशुद्ध स्वस्थ निराभिप्रायारी है। मात्र इतना ही नहीं परन्तु 'न तीयकरो' की अहिंसा की लाया पर उस समय इतनी गहरी छाप पड़ी थी कि जो सरावादि जातियाँ हजारों वर्षों में जन धर्म का मूल चुकी हैं वे भी आज तक कट्टर निराभिप्रायारी रह गई हैं। भ्रमण भगवान् महावीर की अहिंसा ने उस समय की मर्यादाधारण जनता पर इतना अवदस्त प्रभाव डाला कि उस समय के बौद्ध आदि प्राण्यग मत्स्य-मांसादि भक्षण मन्त्राया का भा अपने मन्त्रातिव रूप से इच्छा से नहीं तो दवाव से अथवा लाजनिता के भय से ही अहिंसा के सिद्धान्त का विभीन विचार रूप से अपनाना पड़ा। इस लिये यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि अहिंसा धर्म का प्रधान सम्बन्ध जना के साथ ही है।

भारतगौरव स्वर्गवामो लोकमायतिष्ठ ने तो स्पष्ट रूप में यह बात स्वीकार की है कि— जन धर्म की अहिंसा ने ब्रह्म-ब्राह्मण धर्म पर गहरी छाप डाली है। जब भगवान् महावीर जन धर्म की पुनः प्रकाश में लाय तब अहिंसा धर्म खूब ही व्यापक हुआ। आज क्या यों में जा पानु-हिंसा नहीं जाती—ब्राह्मण और हिन्दू धर्म में मांस भक्षण और मदिरा-पान बन्द हो गया है वह भी जन धर्म का ही प्रताप है।

अहिंसा तो जन धर्म का मूल सिद्धान्त है, प्राण है और इसका पहला पाठ मांसाहार निषेध से ही प्रारम्भ होता है। जनधर्म की मायना है कि ब्रह्म भगवान् महावीर हो या बुद्ध अथवा कोई भी महान् व्यक्तित्व क्यों न हो यदि वह मांसाहार करता है तो वह भगवान् पद का अधिकारी कभी नहीं हो सकता। मांसाहारी न तो स्व स्वरूप को समझ सकता है और न ही बुद्ध और सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्ति कर सकता है, इसलिये यह अनन्त दुःख का भाग भी नहीं खोज सकता और न-ही-बुद्ध का पालन कर सकता है।



## जैन गृहस्थो (श्रावक-श्राविकायो) का आचार

जन गृहस्थो म पुरुष वो श्रावक तथा स्त्री को श्राविका कहत हैं।

(क) गृहस्थ धर्म की पूर्व भूमिका

सद्यविभाजन—तीर्थंकर भगवान ने जब धर्म-शासन की स्थापना की तो स्वामाविक ही था कि उस स्थायी और व्यापक रूप देने के लिये वे सद्य की स्थापना करते। क्योंकि सद्य के बिना धर्म ठहर नहीं सकता।

जन सद्य चार धर्मियों में विभक्त है—

१ साधु २ साध्वी ३ श्रावक ४ श्राविका।

हमम साधु-साध्वी का आचार लगभग एक जसा है और श्रावक-श्राविका का आचार एकसा है।

मुनि (साधु-साध्वी) के आचार का उत्कृष्ट आय करेंगे। यहाँ पर श्रावक-श्राविका के आचार का वर्णन करते हैं क्योंकि श्रावक-श्राविका का भी जन शासन में महत्वपूर्ण स्थान है। श्रावक का आचार मुनिधर्म के लिये नीच के समान है। इसी के ऊपर मुनि के आचार का भव्य प्रासाद निर्मित हुआ है।

श्रावक पद का अधिकारी—

जन धर्म म जन मुनिया के लिये आवश्यक आचार प्रणालिका निश्चित है और उस आचार का पालन करनेवाला साधक ही मुनि कहलाता है। उसी प्रकार श्रावक होने के लिये भी कुछ आवश्यक धर्म हैं। प्रत्येक गृहस्थ भाव श्रावक नहीं कहला सकता, बल्कि विशिष्ट धर्मों

वाला श्रावक ही

जन परम्परा के अनुगार श्रावक-श्राविका बनने की योग्यता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सात दुष्कर्मना का त्याग करना आवश्यक है —

१ जमा खर्चना २ मांसाहार ३ मदिरापान ४ वेश्यागमन, ५ गिहार, ६ चारी ७ परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन । ये सात दुष्कर्मना<sup>१</sup> हैं ।

ये सातों ही दुष्कर्मना जीवन का अथ-पतन की ओर ले जाते हैं।<sup>२</sup> इनमें से किसी भी एक कर्मना में फंसा हुआ अज्ञाना मनुष्य प्रायः सभी कर्मनाओं का गिहार बन जाता है ।

इन सात कर्मना में गतिमत्त पूर्व किन्हीं भी कर्मना का त्याग न करके बाल ही श्रावक-श्राविका बान के पात्र होत हैं ।

(ख) श्रावक जनन के लिये —

उपसृक्त सात कर्मना के त्याग के अतिरिक्त गुण्य में अथ गुण भी होने चाहिये । जन परिभाषा में उन्हें मार्गानुगामी गुण कहते हैं । इन गुणों में से कुछ ये हैं —

नीति पूर्वक धनोपाजन करे निष्ठाचार का प्रशस्त हो गुणवान पुरुषों का आदर करे मयुरभाषी हो लज्जाशील हो धीलवान हो, माता पिता का भक्त एवं सेवक हो धर्मविरुद्ध दण्डविरुद्ध—एवं कुलविरुद्ध शायन करने वाला हो आय के अधिक व्यय करने वाला हो प्रतिदिन धर्मापन्न सुनने वाला हो देव-यु (जिनके प्रभु तथा निग्रह गु) की भक्ति करने वाला हो नियत समय पर परिमित साहित्य भोजन करने वाला अतिविश्रान्त-हीन जनोवाए माधु-सर्तों का यथोचित सरकार करने

१ मज्झिमसुत्ता आञ्जणसुत्ता मंसपसगी जूयपसगी वेसापसगी परदारपसगी । (जातागूत्र अ० १८ सू० १३७)

जन्म-मल-समचारिणो यं पचिन्ति पमुगणं बियं तियं चउरिन्ति । विविह्वीवे पियवीविणं मरणदुक्खपडिबूँ वराए हणति ।

(प्रश्नव्याख्यान प्रथम अ०)

२ विपाकसूत्र—दुःखविपाक (सप्त दुष्कर्मना का फल)

बाल, गलो का पनपानी अपन आश्रित जलो का पान्न-सौजन्य करने वाला, आमा-सौछा सोचने वाला सौम्य परापरारपरायण काम क्रोधादि अन्तरिक दायुआ का दमन करने में उद्यम और इन्द्रिया पर काबू रखने वाला है। इत्यादि गुणों से यवन गृहस्थ ही आचरण्यम का अधिकारी है।

एक प्रत्यक्ष तत्त्व के स्वप्न का सम्यक् प्रकार से जानने की अभिरुचि से तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप को जानने दृष्ट सन् ध्यान वाला गृहस्थ ही आचरण्यम का अधिकारी है।

### (ग) धाढ्यधम

जो "गृह्य का विधान है— चारित धम्मो । अर्थात् चारित हा धम है।" चारित क्या है ? इस प्रश्न का समाधान करने हुए कहा गया है—

“अनुत्तामो विणिचित्ती तुहे पवित्ती य जाण चारित ।”

अर्थात्—अनुत्तम धर्मों से निवृत्त होना तथा तम धर्मों में प्रवृत्त होना चारित कहलाता है। अस्तुत सम्यक् चारित या सत्तचार ही अनुत्तम की विनियमा है। सत्तचारहीन जीवन सधर्मीन पुण्य के समान है।

सुख्य दम के लिए बन गये गये बारत कर्तों में मे मान पहला अहिंसाधु-धम मानवा भोगोभोगपरिमाण बत तथा आठवीं अनम-इत्यादि बत—इन तान धर्मों का ही धर्म मानव में उद्भव किया जाता है। क्योंकि इस नियम का उद्भव सामाजिक आदि धर्मधन पदार्थों के भक्षण का परिहार है, जिस का समावेश इन ताना धर्मों में होता है। अन विन्मार भय से बाध धर्मों के स्वरूप का उद्भव करना उचित नहीं समझा गया।

धावक आविवाओं के बारत धर्मों के मान

धर्म अनुत्तम—१ स्व-प्राणान्तरितविरम्य अहिं



२ सत्यानुव्रत, ३ अचीर्यानुव्रत ४ ब्रह्मधर्यानुव्रत, ५ परिग्रह-परिमाण अनुव्रत ।

तीन गुणव्रत—६ दिग्व्रत, ७ भोगोपभोगपरिमाण व्रत, ८ अनयदण्डरयाग व्रत ।

चार निष्ठाव्रत—९ सामायिक व्रत १० स्वावकाशिक व्रत, ११ पौषधापवास व्रत १२ अतिथिमविभाग व्रत ।

(घ) आत्मक-आविका का अहिंसानुव्रत

पहला व्रत स्यूत प्राणातिपानविरमण व्रत अर्थात्—जीवों की हिंसा से विरत होना । ससार में दो प्रकार के जीव हैं स्थावर और जस । जो जीव अपनी इच्छानुसार स्थान बदलन में असमर्थ हैं वे स्थावर कहलाते हैं । पृथ्वीकाय अप्काय (पानी) अग्निकाय वायुकाय तथा वनस्पति काय—ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं । इन जीवों के सिर्फ स्पर्श-द्रव्य होती है । अतएव इन्हें एक-द्रव्य जीव भी कहते हैं ।

कुम्भ-गुप्त के प्रसंग पर जो जीव अपनी इच्छा के अनुसार एक जगह से दूसरी जगह पर जाते-जाते हैं जो चलते फिरते और बीजते हैं वे जस हैं । इन जस जीवों में कोई दो इन्द्रियों वाले कोई तीन इन्द्रियों वाले कोई चार इन्द्रियों वाले कोई पाँच इन्द्रियों वाले होते हैं । ससार के समस्त जीव जस और स्थावर विभागों में समाविष्ट हो जाते हैं ।

मुनि दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा का पूरा रूप में त्याग करते हैं । परन्तु गृहस्थ ऐसा नहीं कर सकते अतएव उनके लिए स्थूल हिंसा के त्याग का विधान किया गया है । निरक्षराय जस जीवों की सबल्य पूजन की जाने वाली हिंसा को ही गृहस्थ त्यागता है ।

जब शास्त्रों में हिंसा चार प्रकार की बतलाई गयी है—<sup>१</sup>

१ आरम्भी हिंसा, २ उद्यागा हिंसा ३ विरापी हिंसा, ४ मकरपी हिंसा ।

१ जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक भोजन-पान के लिये, और परिवार के पालन-पोषण के लिये अनिवार्य रूप से हानि वाली हिंसा आरम्भी हिंसा है।

२ गृहस्थ अपनी आज्ञाबिम्बा चरान के लिये कृषि गोशाला व्यापार आदि उद्योग करना है और उन उद्योगों में हिंसा की भावना न हान पर भी हिंसा होनी है वह उद्योगी हिंसा कहलाती है।

३ अपने प्राणा की रक्षा के लिये कुटुम्ब-परिवार की रक्षा के लिये अथवा आक्रमणकारी पक्षप्राप्त दगादि की रक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा विरोधी हिंसा है।

४ किसी निरक्षराधी प्राणी की जान बूझ कर मारने की भावना से हिंसा करना सक्न्वी हिंसा है।

इस चार प्रकार की हिंसा से गृहस्थ पण्डित व्रत में सक्न्वी हिंसा का त्याग करना है और पाँच तीनों प्रकार की हिंसा में से यथाशक्ति त्याग करके अहिंसा व्रत का पालन करना है।

१ अहिंसा व्रत का पट्ट रूप से पालन करने के लिये इन पाँच दोषों से बचना चाहिये —

१ किसी जीव को मारना-पीटना न करना।

२ हिंसा का अंग भग्न करना किसी का अपमान बनाना विरूप करना।

३ किसी का शत्रुता में डालना यथा तोने-भना आदि पतियों को विश्रुत में बाँध करना कुत्त आदि को रस्सी में बाँध रखना। ऐसा करने से उन प्राणियों की स्वाध्यायना नष्ट हो जाती है और उन्हें व्यथा पहुँचती है।

४ थोड़ा बल सक्न्वर ठेक गया आदि जानवरों पर उसके सामर्थ्य से अधिक बाँध लादना नौकरों से अधिक काम देना।

५ अपने अधिन प्राणियों को समय पर भोजन-पान न देना।

इन उपयुक्त समस्त दारों का त्याग अहिंसाव्रत की भावना में आवश्यक है।

## (क) सातवीं भोगोपभोगपरिमाण व्रत—

एक बार भोगन योग्य आहार आदि भाग कहलाते हैं। जिन्हें पुन पुन भोगा जा सके उस वस्त्र, पात्र, मवान आदि उपभोग कहलाते हैं।<sup>१</sup> इन पदार्थों को वाम भक्षण को मर्यादा बाध रना 'भोगोपभोगपरिमाण व्रत' है। यह व्रत भोजन और व्रम (व्यवसाय) से दो भागा में विभक्त किया गया है। भक्ष्य (मानव के खान-पीन योग्य) भोजन पदार्थों की मर्यादा करने और अभक्ष्य (मानव के न खान-पीन योग्य) पदार्थों का त्याग करने का इस व्रत के पहले भाग में विधान है। भोजन (भक्ष्य) पदार्थों की मर्यादा करने से लोभपता पर विजय प्राप्त होता है तथा अभक्ष्य पदार्थों (माता, मदिरा आदि) का त्याग से लालूपता के त्याग का साथ हिंसा का त्याग भी हो जाता है। दूसरे भाग में व्यापार संबंधी मर्यादा कर लेने से पाप-पूर्ण व्यापार का त्याग हो जाता है।

इस व्रत को अङ्गीकार करने वाला साधक मदिरा मांस शहद तथा दो घड़ी (४८ मिनट) छाछ में से निवारण के बाद का मक्खन (क्योंकि दो घड़ी का मक्खन में त्रम जीव उत्पन्न हो जाते हैं), पाँच उदुम्बर फल (बड़-पीप, पिल्लवण-बटुमर मूल के फल) शत्रिभोजन इत्यादि का त्याग करना है। क्योंकि इन सब में त्रम जीवों की उत्पत्ति होती रहती है इस रीति इनके भक्षण में माताहार का साथ लगता है जो कि श्रावक के लिये भक्ष्य वर्जित है।<sup>२</sup> मारा यह है कि ऐसे सब प्रकार के पदार्थ, जिनमें

१ सङ्ख्य भुञ्जन् च स भोगोपभोगपरिमाणिकः ।

पुन पुन पुनर्भोग्य उपभाषाङ्गनादिव ॥

(योगशास्त्र प्र. ३ श्लो० ५) ।

२ भक्ष्य भाग नवगीत मधुदुम्बरपत्रम् ।

अन्नन्नकायमपातफलं रोगी च भोजनम् ॥ ६ ॥

आम गौरम गम्भूज द्विष्ट पुण्डितोन्नम ।

दम्पहृदितयानीत कुयिना न च व्रजयन् ॥ ७ ॥

(आ. हैमचन्द्रव्रत योग शास्त्रे प्र० ३) ।

मरण के आधिपत्यार की मनावना ही अवश्या बुद्धि में बिना  
 आव आवन के त्रि वक्रित है। एग व्यापारजिन में भग जीवा की रिगत  
 बिनाग मर ग सम्भव हा आवन के त्रि वक्रित है। जग—जगो का —  
 नाट-नाट कर कोयन बनाता ठका ए कर जग का सजाइता, हापी  
 दांत आदि का व्यापार करना मदिग जगो मात्त वस्तुमा का निव्य  
 केरना प्राणपानत विद धधना और मृगधारिणा निव्या है मृगधार  
 करवा कर इत्यापारजिन करना, आदि निव्य व्यापारों का भा आवन एपाग  
 कर नेता है।

(ब) आठवीं अनपर्वद्विरमण पत—

अनपर्वद्विरमण—बिना प्रयोजन रिगादि करना अनर्थक बहूगता  
 है। इनका भी आवन को त्याग करता चातिर।

१ (क) मदिरा के दोष—

विवेक सयमा शानं मत्वं नीच दया क्षमा ।

मद्याद्विनीयते गर्वं सुख्या वहिनरण्यान्वि ॥ १६ ॥

पापाणां कारणं मद्यं मद्यं कारणं मापनाम् ।

रागादुर इवापथ्यं तस्मात्तस्य विवर्जयन् ॥ १७ ॥

(ख) मांस के दोष—

विवान्धिति या मांसं प्राणिप्राणस्यहारत ।

हमस्यत्वगौ मूत्रं दद्यात्त घमनास्ति ॥ १८ ॥

अपनीयन् मत्तं मार्गं दद्यां यो हि विहीर्यति ।

ज्वलति ज्वलन् वस्त्रं ग रापयितुमिच्छति ॥ १९ ॥

गद्यं गमूहिनानां गानुगमानुपनिम् ।

नरकाध्वनिं पापयं, वाप्रतीयात् रिगिर्तं मुधी ? ॥ २३ ॥

(ग) मवनीत (मवतन) के दोष—

अतमुद्धतस्मिन् नुगुम्मा अनुगाम्य ।

यन् मूछन्ति सप्राद्य नवनोत्तं विनेदिमि ॥ २४ ॥

(घ) भण्ड (गह्व) के दोष—

अत्र अन्तर्धानं निधानमप्यत्र नृणां ।

विवेकशून्य मनुष्या की मनावृत्ति चार प्रकार के व्यर्थ पाप को उत्पन्न करती है—

१ अपध्यान—दूमरा का बुरा विचारना ।

२ प्रमादाचरित—जाति कुल आदि का मद करना तथा विक्रय, निष्ठा आदि करना ।

३ हिंस्रप्रणय—हिंसा के साधन—तलवार, दण्ड, तोप वम आदि का निमाण करने दूमरा को दना मटारक क्षत्रों का आविष्कार करना ।

४ पापपदेन—पापजनक वार्यों का उपदेन देना ।

इस व्रत का अन्तीकार करने वाला साधक कामवासनावधक बाना लाप मही करता । कामोत्तमज बुधेष्टाए नहा करता । असम्पन्न पूहड़ वचनों का प्रयोग नहीं करता । हिंसाजनक क्षत्रों का निर्माण नहीं करता, इनके आविष्कार व विक्रय में भाग नहीं लेता और भाग्यपयोग के माग्य पत्नीयों में अधिष्ठा आसन्न नहीं होता ।

इस प्रकार श्रावध-श्राविराई हिंसा-भामिपाटार आदि दापां से बचने के लिये उपयुक्त व्रत का भावधानी से पालन करी हुए सदा जागरूक

(६) पाँच उर्दुबर पत्रों के शोध—

उत्तर-वट पत्र-श्रावोदुबर गागिराम ।

विष्णुस्य च नान्नीमात्स्य इमिषु गङ्गाम् ॥ ४२ ॥

(७) रात्रिभोजन के शोध—

धीरामवाररुद्धाया पत्नी यत्र जन्म ।

नव भाय तिरिदयन्त उत्र गीत का निधि ? ॥ ४९ ॥

(८) गोरस कच्चे से मिश्रित त्रिदल के शोध—

आमगारामपुकादिदलानि पुत्रव ।

दृष्टा वैत्रिभि मूमास्तस्मात्तानि विवजयन् ॥ ७१ ॥

(९) जलु मिश्रित पुष्प-फल में शोध—

जन्तुमिश्र फल पुष्प यत्र चान्यपि त्यक्त ।

मयानमपि समस्त निबन्धनरायण ॥ ७२ ॥

(आचार्य हमचन्द्र उत यागारुत्र प्रकाश ३) ।

रहते रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि जन घमानुयायी धमणापागर महम्म  
न ता माम खरीद कर ला सकते हैं न पका सने हैं न खा सकते हैं और  
न ही अपने हाथों से पचेन्द्रियादि जीवा का बंध बरक मास बना सकते हैं।

हम पहले स्तम्भ में सराह जाति का परिचय दे आये हैं जिस  
में उत्तमा खान-गान-आचार सम्बन्धी सतिज विवरण (न० ३) लिखा  
है। उसमें यह स्पष्ट है कि उन लोग का आचार और विचार भा श्रावक  
का इन उपर्युक्त वृत्ता का मन्वया अनुकूल चलाया रहा है। अतः स्पष्ट  
है कि जन मय में सामिपाहार का प्रचलन प्राचीन काल से लेकर आज  
पर्यन्त कभीपि समझ नहीं है।

---

## निर्ग्रन्थ श्रमण [जैन साधु-साध्वी] का आचार

जनागमो मे स्वागमय जीवा मङ्गीनार वरन वाले व्यक्ति की योग्यता का विस्तृत वर्णन किया है। आयु का कोई प्रतिबंध नहीं होने पर भी जिससे शुभ सत्त्व-गुण प्राप्त हो चुकी है जिससे आत्मा-अनात्मा के स्वरूप को समझ लिया है जो भोग राग और द्वेषों के विषयों को विष समझ चुका है तथा जिसने मानस चरम धराण्य की ऊँची पहुँच लगी है वही स्वागी निर्ग्रन्थ जने के योग्य है। पूरा विरक्त होकर शरीर सम्बन्धी ममता का भी त्याग करके जो आत्म-आराधना में मग्न रहना चाहता है वह जैन भूमिधर्म अर्थात् जन दीक्षा ग्रहण करता है।

उम धर-ब्यार, धन-नैस्त हरी परिवार माता पिता स्वतन्त्र जीवन आदि पक्षों का त्याग करना पड़ता है। सन्नाश श्रमण वही है जो अपने आन्तरिक विचारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। वह अपनी पीड़ा को धर्यान मान कर सदस्य भाव से सन्न कर जाता है मगर दर-पीडा उसके लिये असह्य होती है। जन साधु वह नीका है जो स्वयं तरती है तथा दूसरा का भाँता करता है।

भगवान् मन्गीर वन्ते हैं—साधुओ ! श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये लाभ-श्रम-से-नम साधुओ से निर्वाह कराने निरोहता-निष्ठाप धृति समूर्द्धा-अनागमि अगति अतिबद्धता शान्ति नम्रता मरणा निर्गमता ही प्राप्त है।

जन साधु के लिये पाँच महाव्रत अनिवार्य हैं। उह रात्रिभीजन का भी मन्त्रा त्याग जाता है। इन महाव्रतों का मन्त्राति पान्न नियमिना नहीं कहला सकता। महाव्रत इस प्रकार है —

“पायिबह-मुसावाया-अदत्त-मोहण-परिग्राहा विरजो ।

राईमोयणविरजो, ओवो भवइ अथासयो ।’

१ अहिंसा महाव्रत—जीवन पयन्त व्रम (हृन्-चलन की सामध्य वाले) और स्थावर (एक स्थान पर स्थिर रहने वाले) सभी जीवा की मन बचन काया से हिंसा न करना दूसरों मन बचाना और हिंसा करने वाले की अनुमोदन न देना—अहिंसा महाव्रत है ।

साधु प्राणिमान्न पर करना की दक्षि रपत्रा है । अतएव वह निर्जीव जल अक्षिप्त जल का हा सवन करता है । अग्निराश का हा की हिंसा स बचन के लिय अग्नि का उपयोग नहीं करना । पद्मा आग्नि हिंसा कर वायु की उत्तरणा नना करता । पृथ्वीवाय का जीरों की रक्षा के लिय जमीन खोन्न आदि का त्रिवारों महा करता । वह अचिन-जीवरहित आहार का हा ग्रहण करता है । मासान्तर सवन्त सत्राव हान से उमवा सववा त्यागी होता है । महाव्रतपारा जन साधु स्थावर और चलते चिन्ते व्रम जीवा की हिंसा का पूरा त्यागी होता है ।

उन मनि रात्रि भोजन का भी त्याग होता है क्योंकि रात्रि भोजन से आमक्ति और राग का नाशना होता है तथा जीव वस्तु आग्नि के गिर जान म निमा एक मासाहार दाप का लगना भा मभव है ।

धमग भगवान महावीर कहमाने ह कि —

सूय के उत्प मे पहले तथा सूय के अस्त हो जान के बाद निर्धय मुनि का सभी प्रकार के भोजन-गान आग्नि का मन स भी हटा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि ससार म बहुत मे व्रम जीव (चलन फिरन उड़न वाले) और स्थावर (एक स्थान पर रहने वाले) प्राणी बड ही मूढम हाव हैं । वे रात्रि मे दम्ब नहीं जा सवते तो रात्रि म भोजन को लिया जा सवता है ?

जमीन पर वहीं पानी पडा हाता है, वहीं बीज त्रिस्तर होत हैं और वहीं पर मूढम बाढ-मवौड आग्नि जीव होत हैं । निम म उन्हें



समय नहीं है। रात्रि का भोजन आदि मंत्रसंजीवना का पठ जाना प्रायः समय होने से हिंसा एवं मात्सह्यार के दोष से प्रायः बचा नहीं जा सकता। इस प्रकार सब दायों को देखकर ही पातपुत्र भगवान् महावीर ने कहा है कि 'निग्रह मुनि रात्रि का किसी भी प्रकार से भोजन न करे।'

अन्नादि चाराही प्रकार के आहार (१ अन्न—वह सारा सब जिससे भोजन मिले २ पान—वह आहार जिससे प्यास आदि मिट ३ स्वाद्य—वह आहार जिससे चाड़ी सुखित हो ४ जस पत्रादि ५ स्वाद्य—इत्यादी सुपादी आदि) का रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं दूसरे दिन के लिये भी रात्रि में स्वाद्य सामग्री का खयाल करना निषिद्ध है। अतः अहिंसा महाव्रत पारी धमण रात्रिभोजन का खयाल रखा ही होता है।

२ सत्य महाव्रत—मन में सत्य सोचना बाणी से सत्य बोलना और काम से सत्य का आचरण करना तथा सूक्ष्म असत्य का भी प्रयोग न करना सत्य महाव्रत है।

जन साधु मन-वचन तथा बाया से कदापि असत्य का भजन नहीं करता। उस मीन रहना प्रियतर प्रतात हाता है फिर भी प्रयाजन होने पर परिमित हितकर, मधुर और निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करता है। बटु बिना सोबे पिघारे नहीं बोलता। हिंसा को जनजन देने वाला वचन भुस से नहीं निकालता। हसी मजाक आदि बातों से जिनके कारण असत्य भाषण का सम्भावना रहती है, उससे दूर रहता है।

३ अक्षीय महाव्रत—मुनि सत्तार की कोई भी वस्तु, उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करता चाहे वह सिंघासि हा चाहे निर्जीव घासालि हा। दांत माफ करन के लिये तिनका जसी सुच्छ वस्तु भी मालिक की आज्ञा बिना नहीं लेता।

४ ब्रह्मचर्य महाव्रत—जन मुनि काम वृत्ति और वासना का नियमन करके पूरा ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस दुष्य महाव्रत का पालन करने के लिये अनन्य नियमों का बढोल्ता से पालन करना पड़ता है। उन से कुछ इस प्रकार हैं—

- (क) बिना धन का ही स्त्री पुरुष का विवाह हो जाने न रहना ।
- (ख) स्त्री को हाथ न मार दिखाना आदि का धन न करना ।
- (ग) स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे पर न रहना ।
- (घ) स्त्री के अंगों का गणना न करना ।
- (ङ) स्त्री-पुरुषों के कामुकता पूरा होना न करना ।
- (च) मदन मृगमय-वर्षा के पुरुष-पत्नी भाग्यमय जीवन को भुगना देना और उगा अनुभव करना कि मनुष्य संपन्न होकर मरना नया जन्म हुआ है ।
- (छ) सत्य बोद्धि विचारवाक्य सत्य और लामय आहार न करना ।
- (ज) मरणा न अधिक आहार न करना । अधिक-से अधिक बलीय छेने और (मरणा) भोजन करना ।
- (झ) स्नान धन शृंगार आदि करने आहार न करना ।

५ अवशिष्टह भ्रातृवत्—प्राप्य परिषद् मान का त्यागी होना है। फिर मन्त्री वगैरह होना है। यन्त्रधारि या शिष्य वगैरह। अथवा अन्य भी कोई पद होना है। वह मन्त्री के शिष्य मन्त्र-वचन-वाचन से समस्त परिषद् का छाह देता है। पूज्य अथवा जनाग्रज अवशिष्टह और सब प्रकार के समस्त से रहित होकर विचरणा करता है। सामुद्रिक का पान्थ वचन के शिष्य उस दिन उपदेशों की अनिवार्य आवश्यकता होती है। अतः प्रति भी उस समय नहीं होता।

यद्यपि मूर्छा को परिग्रह बना गया है, तथापि बाह्य पदार्थों के त्याग में अनागतिकता का विकास होता है, अनपेक्ष बाह्य पदार्थों का त्याग भी आवश्यक माना गया है ।

जन मानुषिमी प्राणी जयता वाहन की गवारी नहीं करता । वह गया  
नग पाव, विहार द्वारा मम फिरकर सब जीवों को

आत्म-साधन बनाने के प्रयत्न में लग्न रहता है। सर्दी-गर्मी भूख-प्यास, सर्प धूप की भी परवाह न करके वह सतत ध्यान, तप तथा प्राणिया के उपकार के लिये पयटक बना रहता है। सब प्रकार के परिपह और उपसर्गों को सह्य सहन करते हुए भी अपन जीवनलक्ष्य का त्याग नहीं करता। किसी सूक्ष्म-सं-सूक्ष्म प्राणी का भी हिंसा उससे न हो जाय इसके लिये वह सदा साधमान रहता है और इस दाप से बचन के लिये वह अपन पास सदा 'रजोहरण' रखता है तथा सचेत बच्चा पक्का अथवा दोप वाला ऐसा बल्यपति का आहार भी कभी ग्रहण नहीं करता। वस्तु के निचम्न भाग को डालने से किसी एवेन्द्रिय जाव की भी हिंसा न हो जाय इसकी पूरी सावधानी रखकर स्थान का देखभाल कर तथा पूज प्रमाजन् करके बालता है।

इस प्रकार निग्रय धमण-जन साधु एवेन्द्रिय से लेकर सैन्य जीव की हिंसा से बचन के द्रिय सदा जागृक रहता है।

१ एक ऊनाङ्ग गरम वस्तु का गुच्छा, जिससे स्थान साफ करन पर की हिंसा का बचाव होता है।

## भगवान् महावीरस्वामी का त्यागमय जीवन

कुमार वसुमानन्दवीर स्वभाव से ही बरागमयीन एवं परोपकार प्रिय थे। उनके माता-पिता तथा मारा परिवार भगवान् पालनाप के अनुयायी थे। उन्होंने माता पिता के आदेशों का पालन स्वीकार किया। इससे जब वे २८ वर्ष के हुए और उनके माता पिता का देहान्त हो गया तब उनका मन पीला (भाय हुआ) व निम्न पतित हो उठा। परन्तु बड़ भाई मन्त्रिबधन तथा अन्य भ्रात्रेयों के आशीर्वाद के कारण उन्होंने वा कर्षों के निम्न और घर पर रहना स्वीकार कर लिया। किन्तु समय था यह कि 'आज तमः' निमित्त कुछ मा भ्रात्रेय-भगवान् न करना होगा।' अब वसुमानन्द गृहस्थ वेष्ट भ रत्ने हुए भी स्वामी जीवन रितान्त भव। आगे निम्न बने हुए भ्रात्रेय वेष्ट तथा अन्य तान साधनी का विस्तृत चरित्र (इन्तेमाल) में बरत हुए के साधारण आचरणों में अन्तर्निहित करने लगा। ब्रह्मचारिणी के निम्न वस्त्रिण मन्त्रिबधन साधु विष्णुन और अन्य भ्रात्रेय साधनी का उन्होंने पालन ही छाड़ दिया था। मन्त्रिबधन ही व गांधी और सर्वम के आदेश बने हुए धार्मिक और त्यागमय जीवन बिताए थे।

भगवान् महावीरस्वामी ने तीन वर्ष का आयु में गुण-वन्दन तथा गृहस्थाश्रम का त्याग कर एकाका जिन दीक्षा ग्रहण की। आपने सब प्रकार के परिश्रम का सबका त्याग दिया। चन्द्र नाथ अन्तराष्ट्रिय सच का त्याग कर गाँड़ बाग में वर्ष (१२ वर्ष, ६ महीना १२ दिन) तक धारण किया। इनके समय में आपने ३४९ दिन आहार किया यह भी

को दूर कर देवलान-वेवलान का प्राप्त किया। इस राधनायिका  
म प्रभु महावारन कग-कत धार परिपट और उपसग सहन किये थे, उनका  
मक्षय में दहा वधन कर दना इसलिये उचित है कि पाठन महाय समन  
सकने कि भगवान महावार का अपन दहादि पर भमत्व बिलुल नही था।  
थे तो महाय तपस्वी त्यागी थे।

१ प्रथम उपसग गया न किया इसन भगवान महावीर की ध्याना  
वस्था में रहता स मारा। २ दूरपाणि यग के मंदिर में रहतव दूरपाणि  
यस ने अनेक उपसग किये। तब कि—अदुय अदुय करके डराया।  
हाथी का रूप कर के शूड से उठाकर उछाला। सप का रूप बनारर बाटा।  
पिगाच का रूप बना कर डराया। मस्तक में बान में नाक में नन्ना में  
बाँती में, पाठ में तला में, सुकामंड अज्ञा में ऐसी वस्तु की कि यदि कोई  
शामाय पुरुष होना और उससे एक अंग में भी ऐसी पीडा होती तो उसकी  
सत्वात् मृत्यु हो जाती। बिलु प्रभु में मर के समान निश्चल रहते हुए  
अदीन मन से सब कुछ सहन किया। ४ बण्णवीगिव सप न डक मारा  
परन्तु प्रभु ने दान्त चित्त से सहन किया। ५ सुम्प्ट नागकुमार देवता का  
उपसग सहन किया। ६ प्रभु मन में वायोत्सग मुग में सब से बगान  
वन में आग जलायी और वहाँ से अग्नि चले गये। अग्नि शूल घासानि  
को जलाती हुई प्रभु के पंरा के नीचे आ गयी जिससे प्रभु के वर जन्म रूप  
फिर भी प्रभु ने अपना ध्यान नहीं छाडा और वस ही ध्यानमग्न खड़े  
रहे। ६ बटपूतना यंतर दनी न माप मास के दिनों में सारी रात  
भगवान के शरीर पर अत्यंत पीतल पत्र छीटा प्रभु विचलित नहीं हुए,  
अतः मध्यन्तर देवी को ही हार मानना पड़ी। ७ संगम देवता ने एक  
रात्रि में प्रभु को त्रीस उपसग किये—प्रभु पर घूलि की वर्षा का जिससे  
प्रभु के आंस, नाभ, बागादि के खोल बंद हान से प्रभु का वासोस्वात  
रुन गया तो भी प्रभु ध्यान से विचलित नही हुए। बत्रमुखा पानियां  
बनारर प्रभु के शरीर का छतनी के समान छान किया। बत्र चोब  
चाँद दश बनाकर प्रभु को बहुत पीडा दी। तीक्ष्ण चोबवाली दीमक



भगवान् महावीर को बीछे शयो में 'निगण्ठ नायपुत्त' के नाम से सम्बोधित किया है। बीछे के 'मुत्त पिट्ठ' नामक शय में निर्धिया (जा) के मत की काफी जानकारी मिलती है। इन्हीं के 'मज्झिम निकाय' के 'धुत्त दुक्कवग्ग' शय मुत्त नामक शय में बसा है कि राजगृह में निग्रय लड़-सड़े तपस्वियाँ करते थे। निगण्ठ नायपुत्त (महावीर) सर्वत्र-सर्वदोषी थे। चलते हुए बैठ रहते हुए सोते हुए या जागते हुए, हर स्थिति में उनकी पानदृष्टि कायम रहती थी।

### भगवान् महावीर का आचार—

भगवान् महावीर पाँच महाव्रतधारी तथा रात्रिभोजन के संवधा स्थायी थे। इन व्रतों का स्वरूप जन श्रमण के आचार में बर जाय है।

भगवान् महावीर दीना (संयास) लेन के बाद एक शय तक मात्र एक देवद्वय वस्त्र सहित रहे तत्पश्चात् संवधा मग्न रहते थे। हाथों की हथेलियों में मित्र ग्रहण करते थे। उनका शय तयार नियत हुए अन्नादि आहार का वे स्वाकार महा करते थे और न ही किसी के निमन्त्रण को स्वाकार करते थे। मत्स्य मांस मदिरा मादक पदार्थ वगैरे मूल आदि श्रमण वस्तुओं को कदापि ग्रहण नहीं करते थे। शय तपस्या तथा ध्यान में ही रहते थे। छ छ मास तक निज उपवास (सय प्रकार की खा पीने की वस्तुओं का त्याग) करते थे। दाढ़ी मूछ के बाल उखाड़ कर वेग लोच करते थे। स्नानादि के संवधा स्थायी थे। छाट-से-भान तथा चड़े-से-चर किसी भी प्राणी की हिंसा न हो जाय इसके लिए वे बहुत सतकता पूर्वक सावधानी रखते थे। वे बड़ी सावधानी से चलते फिरते, छूत-चूते थे। पानी का बूँदा पर भी तीव्र दया रहती थी। सूक्ष्म-स-सूक्ष्म जीव का भी नाश न हो जाय इसके लिए बहुत सावधानी रखते थे। भयावन जंगल अटवियों का निज जन जंगल में ध्यानालस रहते थे। वे स्थान इतना भयकर होने से कि यदि कोई सांसारिक मनुष्य वहाँ प्रवेश करता तो उससे रोपटे लड़ हो जाते। जाड़ा में हिमपात





## श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्वज्ञान

हिंसी श्री महापुरुष के जीवन का वास्तविक रहस्य जानने के लिये दो धारा की आवश्यकता है — (१) उस महापुरुष के जीवन की बाह्य घटनाएँ और (२) उनके द्वारा प्रचारित उपदेश । बाह्य घटनाओं से आन्तरिक जीवन का अन्तर्गमन नहीं हो सकता । आन्तरिक जीवन का समझन के लिये उनके विचार ही अन्तर्गत ब्रह्म की बात हैं । उनके हैं । उपदेश उपदेशों के मानस का सार उन्हीं आध्यात्मिक भावनाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण है । तात्पर्य यह है कि उपदेशों की जैसी मनावृत्ति होगी वसा ही उसका उपदेश होगा । यह ब्रह्म की प्रत्यक्ष अनुभूति की महत्ता का माप करने के लिये उपयोगी हो सकती है क्योंकि विचारों का अनुभूति का आचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । इसलिये एक ही मर्मज्ञ बिना दूसरे को नहीं समझा जा सकता । श्रमण भगवान् महावीर के उपदेशों की हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं । (१) विचारों की तत्त्वज्ञान (२) आचारों की आचरण अथवा चरित्र । यहाँ पर उनसे विचारों अथवा तत्त्वज्ञान का सम्बन्ध परिचय दग । केवलज्ञान प्राप्त के बाद भगवान् ने कहा— (१) यह लोक है इस विद्वत् म जीव और जड़ दो पदार्थ हैं इनके अतिरिक्त और तीसरी मौलिक वस्तु है ही नहीं । इसलिये यह कह सकते हैं कि जीव और जड़ के समूह का ही लोक कहते हैं । (२) प्रत्यक्ष पदार्थ मूल द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पदार्थ की अपेक्षा से अनित्य अन्तर्धान है । (३) लोकोलोक अनन्त है । (४) जीव और गरीर भिन्न हैं । जीव शरीर नहीं गरीर जीव नहीं । (५) जीवात्मा अनादि काल से धर्म से बद्ध है इसलिये यह पुन पुन जन्म धारण करती है । (६) जीवात्मा

कम रहित होकर मुक्त होती है। (७) जीव और कम का सम्बन्ध अनादि  
 है तो भी अहिंसा, संयम तथा तपश्चरण द्वारा कमों को सर्वथा अशुभ किया  
 जा सकता है। (८) आत्मा स्वतन्त्र तत्त्व है तथा अक्षीय स्वदेहप्रमाण  
 है। (९) जीवात्मा ज्ञान-यन्त्र मय स्वतन्त्र पदार्थ है। (१०) विश्व छ  
 द्रव्यात्मक है—जीवास्तिजाय पुद्गलास्तिजाय धर्मास्तिजाय अधर्मास्ति  
 जाय आवासास्तिजाय और बाष्प। इसमें जीव जन्य है बाष्प पाँच द्रव्य  
 वह ह पुद्गल कृता है, बाष्प पाँच द्रव्य अक्षीय हैं। (११) विश्व के सब  
 पदार्थ ज्ञेय-द्रव्य धीव्यात्मक नित्यानित्य हैं। (१२) जीव कम करने  
 और भोगने में स्वतन्त्र है तथा अपन पुरुषाय बाष्प में कमों का मवसा क्षय  
 करके सिद्ध और मुक्त होकर सात्वत आनन्द का उपभोगना बनता है।  
 (१३) अहिंसा मय अक्षीय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि की अभिवृद्धि एवं  
 अभिव्यक्ति से आत्मा अपनी स्वाभाविकता के समीप पहुँचत हुए स्वयं धर्म  
 मय बन जाता है। (१४) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र्य इन  
 तीनों की परिपूर्णता से जीवात्मा मक्ति प्राप्त करता है। (१५) मुक्ता  
 ब्रह्मा में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। (१६) अपन भाग्य  
 का निर्माता जीव स्वयं है। (१७) जीवात्मा मुक्त होकर के बाष्प पुन  
 अवतार नहीं लेता। (१८) तत्त्व नव है—जीव अजीव पुष्प पाप,  
 आसन्न, मकर, द्रव्य निजरा और मोक्ष। (१९) मानव शरीर से जीवात्मा  
 सब कमों को क्षय करके ईश्वर बनती है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना ही  
 ईश्वरत्व की प्राप्ति है। (२०) जीवात्मा राग-द्वेष (मोहनीय कम)  
 के क्षय से वीतरागता को प्राप्त करता है। यह ज्ञानावरणीय आदि चार  
 घातों कमों को क्षय करके केवलज्ञान केवलज्ञान प्राप्त कर सवज्ञ सवदर्शी  
 बनता है। (२१) ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है जगत् तो अनादि बाष्प से  
 प्रवाह रूप से अनादि और अनन्त है। इस प्रकार साक जीव अजीव,  
 ईश्वर आदि के स्वरूप का विस्तार ध्रुवक विवेचन कर अपनी सवज्ञता  
 का परिचय दिया है।

सारांश यह है कि प्रभु महावार के परम पवित्र प्रवचन (उपदेश)

## श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्व

जिसी भी महापुरुष के जीवन का वास्तविक रहस्य जानना का आवश्यकता होता है — (१) उस महापुरुष का जन्म, पालन और (२) उनके द्वारा प्रचारित उपदेश। जो आन्तरिक जीवन का यथावत परिचय देता है। जो ही समस्त के लिये उनके विचार का अन्तर्गत बनता है। उपदेश उपलब्ध के मानव का सार उनके आन्तरिक जीवन का प्रत्यक्ष चित्रण है। तात्पर्य यह है कि उपलब्ध की जमीन पर ही उसका उपदेश होगा। यह कसौटी प्रत्यक्ष अनुभव के माप बरत के लिये उपयोगी हो सकती है क्योंकि विचारों का प्रचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये एक को समस्त का नहीं समझा जा सकता। श्रमण भगवान् महावीर के उनके विभागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) विचार यानी स आचार यानी आचरण अथवा चरित्र। यहाँ पर उनके सत्त्वगुण का समुचित परिचय देंगे। केवलमात्र पान का बड़ा— (१) यह लोक है इस विश्व में जीव और जड़ का अतिरिक्त और सामग्री भौतिक वस्तु है ही नहीं। इसलिये यह ही जीव और जड़ के समूह का ही लोक कहते हैं। (२) मूल द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अस्थायी है। (३) लावालाव अनन्त है। (४) जीव और शरीर ही शरीर नहीं शरीर जीव नहीं। (५) जीवात्मा अनादि सदा है इसलिये यह पुनः पुनः जन्म धारण करती है। (

कर्म रहित होकर मुक्त होती है। (७) जाव और जन का सम्बन्ध आत्मा  
है। आत्मा अहिमा मय तथा नानन्दरूप द्वारा कर्मों का नश्वर आत्म  
का सङ्गता है। (८) आत्मा स्वतन्त्र तत्त्व है तथा अज्ञान व स्वदेशमात्र  
है। (९) जीवात्मा ज्ञान-दान मय स्वतन्त्र पदार्थ है। (१०) विश्व छ  
इन्द्रात्मक है—जीवाग्निवायु पुद्गलादितनाय धर्माग्निनाय अधर्मास्ति  
नाय आवागास्तिनाय और बाह्य। इनमें जाव जन्य है बाहरी पञ्च इन्द्र  
यह ह पुद्गल ज्ञानी है, बाह्य पञ्च इन्द्र अज्ञानी है। (११) विश्व व तब  
पदार्थ उपात्त-व्यय धीन्द्रात्मक निरघातिय हैं। (१२) जाव जन करण  
और भाग में स्वतन्त्र है तथा अपन पुरुषार्थ व त कर्मों का नश्वर क्षय  
करके मित्र और मुक्त होकर शाश्वत ज्ञान का उपनाम्ना बनता है।  
(१३) अहिमा मय अधोर्ध्व ब्रह्मचय अपरिग्रह आत्मा की अभिवृद्धि एवं  
अभिव्यक्ति में आत्मा अपना स्वाभाविकता व समाप्त पदार्थ व स्वयं धर्म  
मय बन जाता है। (१४) सम्यग्ज्ञान सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र्य इन  
तीनों की परिपूर्णता में आवागा मुक्ति प्राप्त करना है। (१५) मुक्ति  
वस्था में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। (१६) अपन भाग्य  
का निर्माता जाव स्वयं है। (१७) जीवात्मा मूल ज्ञान व बाह्य पुद्ग  
अवतार नहीं रहती। (१८) तत्त्व नव है—जीव अज्ञान पुण्य, पाप,  
आयुष नश्वर व निजरा और भाग्य। (१९) मानव शरीर में जीवात्मा  
नव कर्मों का क्षय करके ईश्वर बनता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना ही  
ईश्वरत्व की प्राप्ति है। (२०) जीवात्मा राम-द्वय (मान्नाम कर्म)  
के मय में वीतरागता का प्राप्त करती है। यं शाश्वतरणाय आत्मा चार  
धाता कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान व वस्तुज्ञान प्राप्त कर सत्त्व राक्षसों  
बनता है। (२१) ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं है, जगत् तो अनादि बाल से  
प्रवाह रूप में अनादि और अनन्त है। इस प्रकार लोक जाव अजीव  
ईश्वर आत्मा व स्वर्ण का विस्तार पूर्वक विवचन कर अपनी सवर्णता  
का परिचय दिया है।

सारांश यह है कि प्रभु महाशक्ति के परम पवित्र प्रवचन (उपदेश)

का आधार मन-वृत्तना और अनुमान की भूमिका पर नहीं था, परन्तु उनसे प्रवचन में वेद-ज्ञान द्वारा हाथ में रखे हुए आँवले के समान समस्त विश्व के स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर लोकाशास्त्र के मूल तत्त्व भूत द्रव्य गुण-पर्याय के विकासवर्ती भावा का दिग्गमन था । अथवा आधुनिक परिभाषा में कहा जाए तो उसमें विराट विश्व या अखिल ब्रह्माण्ड (Whole Cosmos) की विधि विहित घटनाएँ (Natural phenomena), उनके द्वारा होती हुई व्यवस्था (Organisation) विधि का विधान और नियम (Law and order) का प्रतिपादन तथा प्रकाशन था ।

## श्रमण भगवान् महावीर तथा अहिंसा

साढ़ बारह वय की बटिन तपस्या और चार मासवर्षा के परवान् भगवान् महावीर-वर्षमान को वेद-ज्ञान—वेद-ज्ञान का प्राप्ति हुई। वेद-मन्त्रों जीवनमकल परमात्मा हुए। अब मायसर प्रकृति का पूरा विवास उन के महान व्यक्ति-महामा। वेद-ज्ञान का प्राप्ति से भगवान् महावीर माय विव के त्रिकावर्णों ममल पण्यों का हाथ का अणुपण्यों के समान प्रथम जानन लग। उन समय के अनन्त नान अनन्त दान अनन्त सुख और अनन्त भाव के जीवन पुञ्ज थे। आगमा में सब भगवान् महावीर का भवन मन्त्रों माना है। नानपुत्र महावार के समकारीन बोद्धों के पिटवा म भा भगवान् महावीर का भवन और सब वर्णों स्वाकार किया है। बौद्धों के अगमरनिराम सामर प्रथ में लिया है कि नानपुत्र महावीर भवनाता और भवदार्ता थे। उनकी भवना अनन्त थी। वे चलते-चलते माते-जाते हर समय भवन थे। 'मज्झिम निहाय' में उल्लेख है कि नानपुत्र महावार सरज हैं। वे जानते हैं कि किम किमने किम प्रचार का पाप किया है और किम नहीं किया है।

भगवान् महावार अहिंसा तत्त्व की गाथना करना चाहते थे। उसके लिये उन्होंने समय और तप के दो गाथन पठाए बिध। उन्होंने यह विचार किया कि मनुष्य अपना सुखप्राप्ति की लालसा से प्रेरित होकर ही मने से निवृत्त प्राणिया के जीवन की बाहुनि देता है और

इस प्रकार सुख की मिथ्या भावना और सबुद्धित वृत्ति के कारण व्यक्तियों और समूहों में द्वेष बढ़ाता है। रात्रुता की नीव डालता है और इसके फल स्वरूप पीठित एवं पददीर्घत जीव बलवान् होकर बदला देने का निरपेक्ष तथा प्रयत्न करते हैं और बदला लेने भी हैं। इस तरह हिंसा और प्रतिहिंसा का ऐसा विषमचक्र तयार हो जाता है कि लोग मसारा के सुख का स्वयं ही नरक बना देते हैं। हिंसा के इस भयानक स्वरूप के विचार में महावीर न अहिंसातत्त्व से ही समस्त वषों का समस्त कष्टप्यों का और प्राणिमात्र की शांति का मूल देता। यह विचार कर उन्होंने बरमाव को तथा कर्मिक और मानमित्र दापा से हान वाली हिंसा को राखने के लिए शप और समय का अवलम्बन लिया।

समय का सम्बन्ध मुख्यतः मन और वचन के साथ होने के कारण उन्होंने ध्यान और भाषा का स्वीकार किया। भगवान् महावीर के साधक जीवन में समय और तप मही दो बातें मुख्य हैं और उन्हें सिद्ध करने के लिये उन्होंने साढ़े सातह वषों तक जो प्रयत्न किया और जगमें जिस सत्पराता और अभिभावक का परिचय दिया वसा आज तक की तपध्या के इतिहास में किसी व्यक्ति ने दिया हो वह नित्यलाई नहीं देता। गौतम बुद्ध आदि न महावीर के तप को गेह-दुग्ध और देहदमन कह कर उसकी अवहलना की है। परन्तु यदि वे सत्य तथा ध्याय के लिये भगवान् महावीर के जीवन पर सत्यता से विचार करते तो उन्हें यह मालूम हुए बिना कल्पि न रहता कि भगवान् महावीर का तप शुष्क देहदमन नहीं था। वे समय और तप दोनों पर समान रूप से ज़ार पते थे। वे जानते थे कि यदि तप के अभाव से सहनशीलता कम हुई तो दूसरों की सुखसुविधा की आहुति देकर अपनी सुखसुविधा बढ़ाने की लालसा बढ़ेगी और उसका फल यह होगा कि समय न रह पायगा। इसी प्रकार समय के अभाव में कठोर तप भी पराधीन प्राणा पर अनिच्छा पूर्वक आ पड़ देह वृष्ट की तरह निरर्थक है।

ज्या-ज्यो समय और तप की उच्चता से महावीर अहिंसातत्त्व के

अधिकाधिक निरन्तर बहने से तब तब-तब उसकी गम्भीर शान्ति बहने लगी । जिससे प्रभाव में उन्होंने राग-द्वेष को सबका सब कर क्षय-पान का प्राप्ति कर सबका प्राप्त किया ।

भगवान् महावार के समयकागीन जनका समयप्रवक्तृ से उनमें से ।  
 मयागत मौनम बद्ध, २ पूगवदरूप ३ मज्जय वन्निपुत्त ४ पशुध  
 कृष्णायन ५ अश्लिषमवन्निपुत्त और ६ मन्त्रका गागात्त के नाम  
 मिलते हैं । (भगवान् महावार इनके अन्तर्गत थे) ।

उस समय के सब धर्म प्रवक्तृओं में भगवान् महावार के तब-स्थान  
 समय तथा अहिंसा की जनता के मानस पर बहुत गहरी छाप पड़ा थी क्योंकि  
 कि उन्होंने राग-द्वेष आदि मलिन वृत्तियों पर पूरा विजय प्राप्त की थी  
 जिससे वे क्षान्तराग बने थे । इस माध्य का निश्चिन्तित अहिंसा, जिस तब  
 या जिस त्याग में न हो सके वह अहिंसा तब तथा त्याग कृपा हो क्या न हो  
 पर आध्यात्मिक दृष्टि से अनपयोगी है । उन प्रथम महावार में राग-द्वेष  
 की विजय पर ही मुख्यतया भार किया था और अन्त आचरण में आत्म  
 गति कर उन्होंने अपनी बाया घाणा तथा मन पर काबू पाया था अर्थात्  
 अपन दृष्टि और मानसिक सब प्रकार के समय का त्याग कर राग-द्वेष  
 का सबका जातन से समदृष्टि बन था । इसी दृष्टि के कारण भगवान् महावीर  
 द्वारा उपदिष्ट जन धर्म का बाह्य और अन्त्यन्तर स्थूल-सूक्ष्म सब प्रकार  
 का आचार साम्यदृष्टिमूर्त अहिंसा की भित्ति पर ही निर्मित हुआ है ।  
 जिस आधार के द्वारा अहिंसा की रक्षा और पुष्टि न हो सके ऐसे किसी  
 भी आधार को जन परम्परा मान्य नहीं रखना ।

यद्यपि सब धार्मिक परम्पराओं में अहिंसा तत्त्व पर 'यूनाधिक'  
 भार किया है पर जन परम्परा में इस तत्त्व पर जितना भार दिया है और  
 उस जितना व्यापक बनाया है उतना भार और जितना व्यापकता अन्य धर्म  
 परम्परा में देखी नहीं जाती । अतः हम न मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंग  
 और अन्य प्राणियों आदि सुदृढमानिसूक्ष्म जन्तुओं  
 की भावना द्वारा निवृत्त होने के लिये



अहिंसा के इस उपयुक्त विवेचन से भगवान् महावीर के आन्तर अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है ।

केवल भगवान् महावीर न ही नहीं परन्तु सब जात तीक्ष्णरो ने प्राणिवध एवं मात्सार्ग्य का विरोध अपन अपने समय में किया था ।

एक समय था जब कि केवल क्षत्रिया में ही नहीं पर सभी वर्गों में मांस खान का प्राय प्रथा हागी । उस युग में मनुष्यगीय नेमिकुमार ने एक अनुभूत कदम उठाया । उन्होंने अपना शायी पर भोजन के वास्ते बतल दिया जान चाहा पशु-पक्षियों का आत मूक वाणी से सहसा पिघल कर निरवयव किया कि वे ऐसी शादी न करेंगे जिसमें पशु पक्षियों का वध होता है । उस गम्भीर निश्चय के साथ वे सबकी सुनी अनुसूती करके बारात से शीघ्र वापिस लौट आये । द्वारवा में साथ गिरनार पक्ष पर जाकर उन्होंने तपस्या की । भर जवानी में उन्होंने सांसारिक सुखभीषा की परवाह न करते हुए राजपूत्री राजीमती को त्यागकर और ध्यान-तपस्या का मार्ग अपना कर चिरप्रचलित पशु-पक्षीवध की प्रथा पर इतना सख्त प्रहार किया कि गुजरान भर में तथा उसके प्रभाव वाले दूसरे प्रांतों में भी यह प्रथा सदा के लिये समाप्त हो गई ।

भगवान् पाण्डनाथ ने भी जीवहिंसा के विरोध करने के कारण महान उपसर्ग सह । तुर्बिता जस सहज कापी बमठ नामक तापन तथा उनके अनुयायियों की नाराजगी का संतरा उठा कर भी एक जन्ते माँष को गीली लवड़ी ने बचान का प्रयत्न किया ।

दीधनपत्नी महावीर ने भी स्थान-स्थान पर तथा समय-समय पर अपना अहिंसक वृत्ति का अपन जीवन में अनन्त बार परिचय दिया । १ जब जगठ में वे ध्यानस्थ बैठ के एक प्रचण्ड विषधर (चण्डकौकिक) ने उन्हें इस लिया उस समय वन के वृक्षध्यात में अचट ही रहे परन्तु उन्होंने मनी भावना का उस विषधर पर प्रयोग किया जिससे वह सत्ता के लिये वर-



## भगवान् महावीर के मासाहार सम्बन्धी विचार

१—बहना के प्रत्यक्ष अवतार भगवान् महावीर ने मासाहार का दुष्प्रसंगों में माना है और इस तरह का कारण भी बतलाया है : जनागम स्थानांग सूत्र के चौथे स्थान में भगवान् महावीर कहते हैं कि 'चार कारणों से प्राणी नरक में जाना है—(१) महारम्भ से (२) महापरिग्रह रखने से, (३) पंचिन्द्रिय जीवों का बंध करने से (४) मांस भक्षण करने से। पंचमीय भगवता सूत्र, उबनाई सूत्र तथा स्थानांग सूत्र में भी इसी प्रकार का बणन है—

बह सूत्र पाठ इस प्रकार है —

'धज्जि ठाणेहि जीवा जेरसियत्ताए कम्म पचरेंति त जहा —

महारभताते, महापरिग्रहयाते पंचिन्द्रियबहुण कुणिमाहारेण ॥

(ठाणोप सूत्र ठा० ४)

२—जैन साहित्य में घातक (कमार्द्र हिंसक) विहें कहना चाहिए उसका बणन इस प्रकार मिला है —

अनुमता विगसिता, निहता ऋष विक्रयो ।

ससर्तर्ता, ओपहर्ता च सादकाचेति घातका ॥

अर्थात् १—मारन का संग्रह करने वाला २—प्राणियों के शरीर को काटन वाला, ३—मारन वाला ४—मांस मोल देने वाला, ५—मांस

देवन वाला ६—मांस पकाने वाला ७—मांस परोसने वाला ८—नया  
मांस खाने वाला ये सब घातक (कमांड-हियर) हैं।

३—नगवान् महावीर ने मासाहार मन्त्रि और अमन्य पदार्थों का  
आहार कितना पापमूलक बन गया है इसका विषय म जनागम सूत्र-  
कृत्य में वर्णन है —

‘जा ओम मदिरा मास आति अमन्य पदार्थों का आहार करते हैं  
व चाहें या मल कर स्नान करें चाहें नमक आति स्वादु पदार्थों का त्याग  
कर दें उन्हें किसी मांस की प्राप्ति नही हा सकता व ता अनप के करने  
वा है। सूत्र पाठ यह है —

पाओसिजाणांभु जत्थि मोक्खा,  
सारस लोणस जणासएण ।  
ते भजमस लमुण ध भोच्चा  
अन्त्य धाम परिकल्पयति ॥१३॥

(भूतवृत्तांग धुनस्त्वथ १ अध्याय ७)

४—शराबा और मांसाहारी का कितनी धार यातनाएँ नरक गति  
में भोगनी पड़नी हैं इसका भा निम्न वचन जनागमा में पाया जाना है।

५—आचारोंग सूत्र म भगवान् महावीर फरमाने हैं कि जैन भिक्षु  
को यदि कहीं मांस मछली अथवा उसका खाल बाट आदि होन का  
पता लग जावे तो वह वहाँ न जाए। किसी प्राणा किसी भूत किसी जीव  
किसी मत्स्य का न मारना चाहिए न सनाना चाहिए, न कट्ट पकवाना  
चाहिए यही धर्म शुद्ध है।

६—सूत्रवृत्तांग म परमान हैं कि जो साधु मांस-मदिरा का त्याग  
करे। जो मांस मदिरा का सेवन करते हैं वे अनानता में पाप करते हैं  
उनका मन अपवित्र है और वचन भी झूठा है (सूत्रवृत्तांग अ० २)।

७—उत्तराध्ययन सूत्र म मदिरा पान मांस भक्षण तथा दुराचरण  
आदि म नारकी की आगु का बंध होता है। इसका यत्न करने वाले  
वाले कपटी जगलखोर शठ तथा भसी जो

होते हैं वे समझते हैं कि यही जीवन का आनन्द है, परन्तु ध्यान में रखना चाहिए कि जिसे मांस अथवा मांस का दूध का प्रिय है वह भी उसी प्रकार पचाया व ग्रास्य जायगा ।

८—अनुपायद्वार मूत्र म —जिस प्रकार तुल्य तुल्य अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार किसी जीव का भी तुल्य अच्छा नहीं लगता । महं ज्ञान कर जो न स्वयं किया का भारता है और न भारता की प्ररणा ही करता है सभी के प्रति समभाव रखता है वही श्रमण है ।

९—आवृत्तिक मूत्र म—गराव छाड़ \* मांस छाड़ दे विहृति (रम-मुष्ट) भाजन का त्याग कर । बार-बार काया-मय (ध्यान) समा स्वाध्याय कर म लीन हुआ ।

१०—ज्ञाना होन का मार्ग यह है कि बहुत किसी भी प्राणी का हिंसा न करे । अहिंसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है—मात्र इतना ही विधान है । सभी जीव जीना चाहते हैं भरना का भ्रम नहीं आता । सीकिए निषय (जन मुनि) धार प्राणिमय का गरवा त्याग करे ।

११—आ ओषध म मांस शिखावे या सम्मति ने वह नरक म जाता है ।

१२—मांस दुग्ध वाला है, बीभत्स है शरीर के मलों से बना हुआ है अपवित्र है और नरक में ले जाना जाता है । अतः त्याग्य है ।

१३—मांस में क्षण भर म ही अनन्य मूत्रम काष्ण गुहा का जन्म और विनाश होता है । वह नरक के माय में ले जाना वाला मोजन है । कौन बुद्धिमान तेरे मांस का स्वाद सकता है ?

१४—मांस कच्चा हा या पकाया हुआ उससे प्रयत्न दृढ़ है म निर्वाण रूप से निर्गम के जीव उत्पन्न होता है ।

१५—आचार्य रत्नाकर मूरि—मवाध सप्ततिरा म स्पष्ट लिखते हैं —कि आगम में मांस मन्त्रि जाति को जीवों का उत्पत्ति स्थान बताया है —

‘आमासु य पक्कासु य विपक्वमाणासु मत्पेसीसु ।

आयतिअमववाओ भणिओ उ निगोजओवाण ॥ १ ॥

मग्ने महम्मि मत्तम्मि भवणोपम्मि चउत्तए  
उप्पज्जति अणता सत्तण्णा सत्थ अनुणो ॥ २ ॥

(श्लोक ६६, ६७)

अर्थात्—‘बच्चे पक्वे और अग्नि म पचाय दृष्ट्वा मांस का प्रसन्न  
भवत्या म अनन्त निगा जीवा का उत्पत्ति होती रहती है। मदिरा मद्य  
मांस और भवजन में मद्य मद्य मांस और भवजन का रस क अनन्त  
जीवों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मांस अग्नि मान स अनन्त  
जीवों का नाश होता है अतएव इनका भजन करना दाशपूर्ण है।

१६—आज के विज्ञान न मा इस बात का स्पष्ट मिट कर दिया है  
कि मांस अनगिनत जीव बाणानुमा का पुत्र है और उसमें प्रतिगण इमि  
समान जीव उत्पन्न होते रहते हैं।

१७—भगवान् महानीर आचारण गुरु म परमाने हैं —

मे भेमि —जे अईया जे य पइयणा जे य आपमिस्ता अरहता  
मगवतो ते सव्वे एवमाइकवति एव भामति एव पव्ववति, एव  
पव्वति सव्व पाणा, सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता म हत्तव्वा म  
अज्जावेयव्वा, न परिघितव्वा, न परिमावेयव्वा म उह्वेयव्वा । एस  
यम्मे सुद्धे गिइए तासां समिच्च लोय लयण्हि पवेइए त जहा—  
उट्ठिएसु वा अणट्ठिएसु वा, उवट्ठिएसु वा अणवट्ठिएसु वा, उवरयव्वसु  
वा, अणवरयव्वेसु वा सोव्हिएसु वा अणाव्हिएसु वा सज्जोगएसु वा,  
मसज्जोगएसु वा, तच्च चेत्य, तथा चय यस्मिं चय पव्वच्चई । (आवासांते)

भावाय —वे (भगवान् भगवार) वदते हैं कि भूतकाल म जा  
तीर्षकर हा चुके हैं अब जा विद्यमान हैं और जा अनागत काउ महोंगे  
वे सब इस तरह वदते हैं बोलते हैं दूसरा को भगवान् हैं तथा प्रख्यापना  
करते हैं—जिसी भी प्राण भूत जीव और सत्त्वो को नहा मारना चाहिए।  
उनपर शासन (दवाव) नहीं डालना चाहिए उह दास की तरह अधिकार  
में नहीं रचना चाहिए। उन्हें किसी प्रकार का भताप नहा देना चाहिए।  
तथा उनका प्राणो को नहीं लूटना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है नित्य है,

साधन है। समार के दुर्गों का जानन बाँटे अरिहृत भगवत्ता ने समय में उद्यत और अनुद्यत उपस्थित और अउपस्थित, मुनियों और गृहस्थों रागिया और त्यागिया, भोगिया और यागिया का समभाव में यह उपदेश दिया है। यही एवं सत्य है, यही तत्वावस्था है और ऐसा धर्म इस निष्पक्ष प्रवचन में ही कहा है।

तीसकर भगवत्ताओं ने मांग के समान अण्ड ज्ञान का भी निषेध किया है क्योंकि यह प्रस जीव का बल्लभ है। जिस प्रकार मांग मछली मदिरा आदि अभद्रय हान से जनागमों में उनके भक्षण का मदघा निषेध है उसी प्रकार अण्ड भी संचित (प्रस जीव वाला) हान से अभद्रय ॥ । जनागमों में कहा है —

सै धेमि, स त्ति मे तसा पाणात्त जहा-अडया पीतया, जराउया सया ससेयया समुच्छिमा उबिभयया उववातिया एत ससारे ति पवुच्चति मन्सस गविजागतो ।

(आ० अ० १ उ० ६)

भगवान् फरमाते हैं कि इस ससार में आठ प्रकार के प्रस जीव हान हैं जसे कि —<sup>१</sup>अण्डज, <sup>२</sup>पीतम <sup>३</sup>जरायुज <sup>४</sup>रसम <sup>५</sup>सस्वेज <sup>६</sup>समुच्छिम <sup>७</sup>उदभिज्ज और <sup>८</sup>ओपपातिक ।

इस पाठ से स्पष्ट है कि कुछ प्रस जीव अण्ड से उत्पन्न होते हैं हमारा अण्ड भी सजीव सिद्ध हो जाता है।

आज के विज्ञान की यह मायता है कि अण्ड गम से निकलत समय निर्जीव होता है। मादा जब ऊपर बैठकर उस सती है तो गर्मी के द्वारा उमम जीव उत्पन्न हो जाता है। विज्ञान की यह युक्ति उचित प्रतीत नहीं हानी। मादा के अण्ड पर बैठने से और गर्मी पहुँचाने से यदि अण्ड में जीव उत्पन्न होता है तो एक आट की बोली अण्ड जसी बनाकर मादा के नीचे रखने में शूब गर्मी पहुँचाने पर उममे से बच्चा निकलना चाहिये क्योंकि यदि शीत समय गर्मी पहुँचाने से हा अण्ड में से बच्चा निकलता

है सो आने की गाली में सभी अवश्य निवृत्तता चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होना क्योंकि आट की गाली ॥ पन्ने जीव नहीं होता ।

अण्डा गम में यन्त्रता है और जान भी गम में पदा होता है । बाहर बाहर केवल परिपक्व होता है और पूरा होता है । यहाँ यह बात समस्त ज्ञानी चाहिये कि अण्ड भी दो प्रकार का होता है १ गमज २ समुत्पन्न । मुर्खों आदि के अण्ड गर्भ में उत्पन्न है इसलिए अण्ड में निवृत्तता वाले जीव को द्विज कहते हैं । द्विज का अर्थ है दो बार जन्म लेना । एक जन्म गम में आकर अण्ड का रूप में उत्पन्न होता है दूसरा अण्ड के गम से बाहर आने के पदचान् उस में सवच्च का रूप में निकलता दूसरा जन्म है । इस प्रकार अण्डा सजाव मिष्ट होता है ।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि गमज अण्डा दो प्रकार का होता है (१) जिस अण्ड में से बच्चा बन कर निकलता है (२) जिस अण्ड में से बच्चा बन कर नहीं निकलता । अतः वे कहते हैं कि जिस अण्ड में से बच्चा बन कर निकलता है उसमें जावनी धर्मित है और जिसमें से बच्चा बन कर नहीं निकलता उसमें जावनी धर्मित नहीं है परन्तु उनकी यह धारणा भी ठीक प्रतीत नहीं होती । वास्तव में दोनों में जावनी धर्मित है । जिस प्रकार यध्या स्त्रा में जनन किया नहीं होती इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी यानि निर्मल है अर्थात् उसकी यानि सजीव होने पर भी उसमें जनन किया जा अभाव है और अवध्या स्त्री में जनन धर्मित होने पर जनन किया होनी है यसे ही अवध्या अण्डा में से बच्चे निकलने हैं और यध्या अण्डा में से बच्चे नहीं निकलते । अतः अण्ड आदि का भक्षण भी उचित नहीं है इसलिए भगवान महावीर आदि सभी तीर्थ कराने अण्ड को भी अभक्ष्य मान कर इसका प्रयोग उचित नहीं माना और इसीलिए जन अहिंसक लोग आज भी अण्ड का प्रयोग नहीं करते ।

जैनाग्रम विधान सूत्र के तीसरे अध्यायन 'अभक्ष्यसेन' ॥ बणन है कि एक बार भ्रमण भगवान महावीर का मुख्य गिण्य इन्द्रभूति सौत्रम गैशपर



मिना के लिए निरल। उन्होंने मांग में किन्ना अपराधी का दसा जिने राजपुरुषों ने घेरा हुआ था। उस बुरी तरह पीटा जा रहा था। उसे उसी का मांग बाट वाप कर बिलाया जा रहा था। उस की दुःशा का देखकर इंद्रभूति गीतम कम फल का विचार करने लगे और उनका हृदय कृष्णा से द्रवित होगया। वापिस लौट कर उन्होंने भगवान महावीर से पूछा भन्तः 'जिस अपराधी का मन राजपथ पर दसा है वह अपने पहले जन्म में क्या था। उसने अपने पिछले जन्म में क्या बुरे कर्म किये थे जिससे उसकी यह दुःशा हो रही है ?'

भगवान् बोले— गीतम ! यह अपने पूव जन्म में अण्डों का व्यापारी था। स्वयं भी मांस-अण्डे आदि भक्षण करता था इसका नाम निहृव था और अण्डों के व्यापार के कारण यह निहृवक अण्ड बनिसे के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने इस काम के लिए नौकर रख हुए थे जो मोरनी भुर्गी, बबूतरी आदि व अण्डे सरीद कर लाते और बाजार में जाकर बेचा करते थे। वह स्वयं भी अण्डों को सूनता सलता और खाता था। दसवा पीकर नंग में घूर रहता था। भगवान् बोले हे गीतम ! यह इतना पापी था जिसके फलस्वरूप अपने जीवन के दिन घूर कर वह तीसरी तरफ में जाकर पैदा हुआ। वहाँ दाहण दुःख भोग कर यहाँ मित्र्य चोर के घर जमा है। इस जन्म में भी अपने किये का फल भोग रहा है।

इन उपयुक्त उद्धरणों से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का लीर उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है।

इससे स्पष्ट है कि श्रमण भगवान् महावीर ने अपने इन विचारों का स्पष्ट अपने आचरण में उतारा और फिर मानव समाज को प्राणी मात्र की अहिंसा का अपनी वाणी और करणी द्वारा प्रभावोत्पादन उपदेश दिया। इसी के परिणाम स्वरूप आज भी जन अहिंसा विश्व में अलौकिक स्थान रखती है।



## जैन मासाहार से सर्वथा थलित

इस उपयुक्त विवेचन में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भ्रमण भगवान् महावीर सबन सबर्णों थे । उनसे आचार और विचार यहाँ तक पवित्र थे कि जब वे अजीव प्राणियों का भी इस्तेमाल (उपयोग) करते थे तो इस बात को पूरा गायधाना रखते थे— मेरे द्वारा किसी छोट से छोटे प्राणी को भी घट न पहुँचे ।

इस विषयविधूति में जगत् के प्राणियों का जिस अहिंसा के महान् पवित्र सिद्धांत का उपदेश दिया या उगका आचरण उनके रोम रोम में था । अर्थात् जो कुछ वे जगत् के प्राणियों का आचरण करने के लिये उपदेश देते थे उसको वे स्वयं भी पालन करते थे । उनके रोम रोम और गूँदा से विषय के प्रत्येक प्राणी के प्रति धार्मिक भाव प्रगट होता था । उन्होंने वैयल्लान प्राप्त कर लेने के बाद सबसे प्रथम यही उपदेश दिया था—'मा हण-मा हण (मत मारो मत मारो) अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो और इस उपदेश के अनुसार ही जो उनके धर्म-माग को स्वीकार करता था उसे वे सबसे प्रथम जीव हिंसा का त्याग रूप प्राणातिपात विरमण व्रत' धारण कराते थे । फिर वह चाहे भ्रमण हा अथवा यात्रा । इस का विवेचन हम पहले कर आये हैं ।

भ्रमण भगवान् महावीर की अहिंसा के विषय में भारत के महान् धारणास्त्री सर अल्पाडी शृष्ठा स्वामी अत्यन्त में एक तात्त्विक दलील दी थी । उन्होंने कहा था कि मैं धारा शास्त्र का अभ्यासी हूँ तो मैं धार्मिक तत्त्वज्ञान में विषय अध्ययन का लाभ नहीं



घाँर कूँड कर त्याग भूमि पर आन पाले तो कोई अलौकिक व्यक्ति ही नजर आते हैं।

भगवान् महावीर न जा उरग्य तथा परिपह सन्न किये उनका वणन करते हुए हृदयकोप उठता है। धन्य है उस महाप्रभु महावार का जिन के हृदय में मित्र व धर्म व समान ही प्राप्ति के धर्म का भी स्थान था।

जागमा म कहा है कि व मान धमा महा वार न थे किन्तु दानवीर दयावीर गान्धीवीर त्यागवीर तथावीर धर्मवीर कमवीर और नानवीर आदि गव गुण म वीर निगेमणि होने म उनका वधमान नाम गीन होकर महावार नाम विख्यात आ।

भगवान् न क्या किसी दंग राष्ट्र और जन्म का जीत कर धन में करन बाग सुखा जिता नहीं किन्तु गिनन अपना आत्मा का जीता है (self conqueror) वहाँ सुखा निजता है।

जहाँ दयाया हन अहिंसावाँ वधवाँ तत्ववाँ स्याद्वाँ मृष्टि वाँ आत्मवाँ परमाणवाँ और विनातवाँ इत्यादि स्थान विषय इतना विनाँ और गम्भीर है जिनका अभ्यास करने म उनकी सदाशता स्पष्ट सिद्ध होती है।

उन्होंने सवसाधारण जनता का मानव सङ्कति विज्ञान (Science of Human culture) के विचार की पराकाष्ठा पर पहुँचने के लिये मक्ति मन्गीध का राजमार्ग (Royal road) सम्पादन सम्पादन और सम्यक चारित्र्य (Right faith Right knowledge and Right conduct) का ज्ञान साधन द्वारा पद्धतिमय दर्शाया। इसान्य व लोचक कहलाय।

मसार ■ तीयकर ग सञ्जोत्पष्ट सर्वोपरि और सवपूँय होने के कारण उम काल म बौद्धधर्माँ निन-भिन्न धर्मों के सस्थापक और गधालय अपने आपका लोचक कहलान म उल्लुङ्गना पूवक प्रतिस्पर्धा की दोटपुम मचा रहे थे। अर्थात् उस समय धर्म प्रतिस्पर्धा (Religious rivalry) की होना-हो मच रही थी। जब कि आर मता और प्रतिस्पर्धि

(Power and popularity) प्राप्त करने के लिये हाइ मच रही है। परन्तु कहावत है कि All that glitters is not gold (प्रथम चमकन वाला वस्तु माना नहा होता)। इस उक्ति के अनुसार यदि धृति और अनुभूति द्वारा मुन और विगन (People of Culture and common sense) के लिये यह सम्पत्ति वाइ बठिन बान नहीं है कि साथकर हान के लिये जिस याचता का हाना आवश्यक है वह भगवान महावार के सिद्धांत उनके समझाने अथ किसी भी में प्रयत्न में नहीं था।

भगवान महावीर के परम पवित्र प्रवचन का आधार मन कल्पना और अतमान की भूमिका पर तो था हा नहीं। अना तत्त्वज्ञान वास्तविकता पर अवलम्बित है। एसा अना का अत्यन्त नहागी कि उनका पनाग-विज्ञान और परमाणवा आधुनिक विज्ञान के (Atomic and molecular-theories) अणुवाद का मायता से तो क्या परन्तु डाक्टर एस्टान एडिंग्टन स्पेक्टर स्टन और युन्त की (theories) मायताओं का भी मान करना है। भारताय तथा पाश्चात्य अनेक विद्वानों ने भगवान महावीर के सिद्धान्तों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

जमन विद्वान डा हसन जवानी कहते हैं कि —

In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system quite distinct from and independent of all others and that therefore it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in India

अर्थात्—अतः भगवान अपना निश्चित विचार प्रकट करने दो म कहगा कि अतपम के सिद्धांत मूल सिद्धांत हैं। यह धर्म स्वतंत्र और अथ धर्मों में सर्वथा भिन्न है। प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान का और धार्मिक जीवन का अभ्यास करने के लिये यह बहुत उत्तम है।

ऐसे सर्वोच्च आचरण तथा उपदेश करने वाले महान् तत्त्वज्ञानी,

वरुणा के प्रत्यक्ष अवतार सत्रज सत्रदर्शि तीर्थकर श्रमण भगवान् महावीर स्वयं मासाहार करते कर गवत थे ? क्यापि नहीं कर सत्रते थे ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अथ मांस मत्स्यमक्षी बौद्ध-बुद्धि आदि धर्मों के समान जनधर्म भारत का सीमाओं का न लांघ सता । इसका मुख्य कारण यही है कि यह मत्स्य मांसादि अभक्ष्य भक्षण का सर्वोत्तम नियम बनना आया है । इसीलिये मासाहारी देशों में इसका प्रसार न हो पाया ।

इस उपयुक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि न तो भगवान् महावीर आदि जन तीर्थकर अथवा निग्रथ श्रमण मासाहार प्रणय कर सत्रते हैं और न ही श्रमणापागण गृहस्थ (ध्यायक-ध्याविकाएँ) मांस का सा अथवा पका सत्रते हैं । यही कारण है कि वसुमान जन समाज भी बट्टर निरामिपाहारी है तथा वे सरावादि अतिथि भी जा गवडा यहाँ में जनधर्म का भूल चपी हैं उनका ऊपर भी आज पर्यन्त जन-तीर्थ कर का अहिंसा की इतनी गहरा छाप है कि वे आज भी बट्टर निरामिपाहारी रहे हैं । मानना हा नही किन्तु जा लोग जन समाज में ज्ञात हुए विद्या भी प्रचार का बत ग्रहण नहीं करते वे भी मत्स्य-मांस जल अभक्ष्य पशुओं का गवन नहीं करते ।

तथागत गीतमबुद्ध बौद्धभिक्षु तथा बौद्धगृहस्थ कुलमसूत्र मासाहार करते थे इसका परिणाम है कि आज भी सारा बौद्ध जगत् सत्र भक्षी है ।

आ धर्मानन्द कौण्डिनी न भगवान् बुद्ध नामक पुस्तक में जित जा सूत्रों का लेकर यह सिद्ध करने की तात्पार्य के चेष्टा की है कि भगवान् महावीर और उनके अनुयायी श्रमण मासाहार करते थे । उनसे लिए हुए अब वे साथ भगवान् महावीर की जीवनचर्या तथा उपदेश (आचार विचार) से विस्मृत भेत नही बाना । इस से यह स्पष्ट है कि उनके द्वारा किया हुआ हा सूत्रों का अध ठीक नहीं है परन्तु इन का दूसरा ही अर्थ होना चाहिये ।

व इन्द्रिये तपायन बुद्ध ने अग्नि उहें अग्राय थडा हुना स्वाभाविक था ।  
उहोंने अपनी पुत्रिका भगवान बुद्ध से यह बात मित्र करने का भरपूर  
प्रयत्न किया कि गौतम बुद्ध मांसाहार नहीं खा । यह भी उल्लेख किया  
कि उस समय अग्नि उन पर मांसाहार का अग्रयन भी दिया करता था ।

परन्तु जब कौशाम्बी का तपायन बुद्ध और उसके भिक्षु गण को  
निष्पत्तिमात्रा मित्र करने में असमर्थ रहे तब उन्होंने भगवान भगवोर  
और उनके श्रमण गण पर भी मांसाहार का दार लाने की वकालत की ।  
प्रमाणों का सूत्राणा का बिपरीताय कर इस बात का मित्र करने की  
जो उन्होंने अनाधिकार चेष्टा की है उनके विषय में हम आगे चल कर  
विचरेंगे । हमारी धारणा है कि उन्हें इस बात का चिन्ता थी कि  
तपायन गौतम बुद्ध एवं उनके भिक्षु मांसाहारी हूँ मैं जन तीक्ष्ण  
भगवान महावीर उनके निष्पन्न श्रमणों द्वारा अग्रयन तथा अग्नि  
गृहस्था से भी वही हूँ मैं गिन जाय इन्द्रिय उद्दान निषण्ण परम्परा  
पर एसी अनुचित आग्रह करने का चेष्टा की है । एक अग्रज ऐसक ने  
ठीक ही कहा है कि "गौतम सन्तान (पुत्र-पुत्री आदि) में भी मानसिक  
सन्तान (अन्य विचारों) पर मनुष्य का अधिकार प्रबल होता है । अपने  
अभिप्राय पर अयोग्य अनुराग, एकान्त आग्रह मनुष्य का स्वयं की  
पहिचान करने में बड़ा बाधा उत्पन्न करते हैं ।

सारंग यह है कि कौशाम्बी जो न भगवत गौतमबुद्ध के मांसाहार  
का श्रेय की डाकने के लिये ही यह असफल प्रयत्न किया है ।

बुद्ध ने केवल अग्नि का उपलक्षण किया था परन्तु भगवान महावीर  
ने अग्नि की मूल सिद्धांत का अर्थ केवल धारित्र्य व्रत में सर्वप्रथम  
सम्मिलित किया । बौद्ध मत की अहिंसा वाया उपदेश बन कर ही रह  
गयी । क्योंकि तपायन गौतम बुद्ध उसे अपने आचार और व्यवहार में  
न उतार सके । यदि उन्होंने अपने आचार और व्यवहार में उतारा होता  
तो बौद्ध जगत् कल्पि मांसाहारी न होता । इससे स्पष्ट है कि वह  
अहिंसा धर्म के धर्म को समझ ही न पाये । भगवान् महावीर के अग्रज



आवरण धीरे उपन्यास में जगत के सामने बहिष्का का इतना सुंदर स्वरूप रखा कि आज भी जन समाज पूर्ववत् बटटर निरामिषाहारी है। उन्होंने परगाया कि किसी के अस्तित्व को न मिटाओ। जिस प्रकार प्राणिहिंसा दुर्गति का कारण है उसी प्रकार मांस भक्षण भी दुर्गति का कारण है। पाप न ऐसे घम को घम कहा जा सब प्राणियों का रक्षक हो और ऐसे घम को निर्वाण का राजमार्ग कहा।

१ प्रो० सी० सी० गर्मा अपनी पुस्तक हिन्दुइज्म में लिखते हैं —

Buddhism only teaches the doctrine of the sanctity of animal life but Jainism not only taught it but also put it into practice. A Buddhist may not kill or do injury to any creature himself but apparently he is allowed to purchase meat from a butcher. A Jain on the other hand is bound to be a strict Vegetarian.

अर्थात्—बुद्ध धर्म केवल पशु के जीवन की रक्षा का ही उपदेश देता है। जन धर्म ने केवल उपदेश ही नहीं दिया परन्तु उपदेश के साथ आचरण में भी उतारा है। एक बीट किसी पशु का स्वयं वध अथवा हिंसा बाह्य न कर परन्तु उसे निःसंकोच कमाई की दुकान से मांस खरीदने की आज्ञा है। दूसरी ओर एक जन निःस्वयं रूपेण दूध शाकाहारी है।

मांस भक्षण से मात्र जन ही अलिप्त रहे हैं

प्रा० ए० चक्रवर्ती एम० ० 'तिरुक्कुरल' पुस्तक पृ० ३० ३१ में लिखते हैं कि —

Meat eating drinking wine and sexual intercourse which are condemned by the *Jains* are accepted by the *Kapalikas* as a fundamental practice of their faith.

The *Buddhist* rejected the authority of the *Vedas*, yet they did not give up meat eating *Buddhist* bhikshus and the laymen, though they observed the principle of

Ahimsa were all meat eaters. They observed the principle of Non violence only to this extent that they did not kill any animal with their own hands. They have no objection to purchase meat from the butchers so long as they do not themselves kill. Even while *Gautama Buddha* was alive this practice was prevalent. This we learn from the Buddhist Scriptures. When that is the case with the Buddhist Bhikshus the Buddhist laymen have no restriction in eating meat. If we are to mention a distinctive Characteristic of the *Jains* we have to say that it is their strict Vegetarian diet. This distinguishes the *Jains* from Others.

From the *Vedic Dharm Shastras* of *Manu* *Bodhiyana* and the later law makers belonging to Vedic schools we notice the following on the chapter *Madhuparka*, *Bodhiyana* gives a list of 25 or 26 animals that are to be killed.

Another prominent fact about the *Dharma Shastras* of Vedic school is the place given to agriculture in the scheme. Agriculture is considered to be the meanest profession and only the *Sudras* of the fourth *Varna* are fit to be engaged in this profession. It is beneath the dignity of the *Devas* to engage themselves in agricultural occupation. Certainly the priests of the higher *Varna* cannot think of touching the plough.

अथान् —जिन मांस भक्षण मन्दिरासन तथा व्यवहार का जनना न निन्द मान कर त्याग किया था उन्हें कापालिकों ने श्रद्धा से मल मिद्वान रूप से स्वीकार किया था। यानी उन्होंने सामान्य मन्दिरासन तथा व्यवहार सत्रन को घम रूप स्वीकार किया था।

बौद्धों न वेनों को तो श्रामणिक नहीं माना किन्तु मांस भक्षण का त्याग नहीं किया। बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध महम्म्य अहिंसा

को स्वीकार करते हुए भी माताहारी थे। वे अहिंसा का इस रूप से मानते थे कि पशुओं की हत्या नहीं करना। परन्तु उन्हें कसाई के बहा से ऐसा माम गरोन्न म कोई आपत्ति नहीं थी, जिसे उन्होंने स्वयं न मारा हो, बौद्ध ग्रन्थों में हम ऐसा जान सकते हैं। जब तथागत गौतम बुद्ध स्वयं विद्यमान थे तब भी यह प्रथा प्रचलित थी। जब बौद्ध भिक्षु इस प्रकार (वे गौतम-गुरु) मामाहार करते थे तब बौद्ध गन्धर्वों की भी मासभक्षण का कोई प्रतिशोध नहीं था। यदि बौद्धों से जना की कोई भी भिक्षु विनयना साजन जावे तो हम यह निश्चय रहना पड़ेगा कि जन कट्टर माताहारी ह।

एक बन्धु धर्मानुयायी मनु बोधायन तथा उनका बाल के वैदिक मिथान निर्माताओं के धर्मशास्त्रों में से नीचे किसे विचार पान है —

मधुपक म गायन न २५ या २६ एस पशुओं की सूच दी है जो कि (मामाहार के लिये) बध करने योग्य हैं।

वदित धर्मशास्त्रों में तब और विग्रह दात यह भा पायी जाती है कि उन्होंने सेती-बाड़ी का एक निवृष्ट काय मान कर उस चीथे वण यानी गूना के करन के योग्य बतलाया है। द्विजा न पता-बाड़ी के बध का स्वयं करना जदनी हानना माना है। माय इनका हा नहा परन्तु ऊंचे वणों के धर्मप्रचारकों ने ता हल का छून सन का विचार माय करना भी पितान्त अनुचित माना है।

। गार्गा यह है कि बन्धु धर्मानुयायी मामभक्षण को उत्तम मानते थे तथा सेती-बाड़ी का निवृष्ट। जनों ने मामभक्षण को एक नम त्याग माना और सेती-बाड़ी का जन भ्रमणोपामर्ग (श्रावका) के लिये त्याग नहीं माना। उपाकदगाय जनायम म भ्रमणान् महावीर के जिन दस श्रावका का चरित्र निवृण किया गया है उनका मुख्य व्यवसाय प्राय

## तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निर्ग्रन्थ चर्यों में माम-भक्षण निषेध

हम जित्त जब हैं कि बुद्ध के समय में सब तो सब भ्रमण सध ॥ थे । इन मत्त म निग्रन्था (जन) का नाम हा सबप्रथम आता है । वे राजगृह म अपवा उससे जग-प्राप्त के शत्रों म अधिक् सख्या म निराग करते थे ।

गौतम बुद्ध समार छाडकर निराग माग जानन के गिये पागियों क शिष्य बन । बौद्ध ग्रन्थ 'लज्जाविस्तर' म लिखा है कि पागित्व (गौतम बुद्ध) पहुँच गाली गये और बडा आगार बालाम के गिये बन । वे पागो बड जानी थे और जानि के ग्राहण थ । बुद्ध न उनके पाम म पाग की बानें सीनी तप भा किया किन्तु उमस उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तब बुद्ध म उन्हें छाड दिया । बौद्ध ग्रन्थ 'मपिमनिषाय' क 'महामित्तना' गुण म बुद्ध की तपश्चर्या का वर्णन है । उन्होंने अमक प्रकार का तपश्चर्या की और छाडी । अत म वासित्त्व न उस समय क भ्रमण व्यवहार के अनकार तीव्र तपश्चर्या करने का निश्चय किया और प्रसिद्ध धम्म नायकों का तत्त्वज्ञान जान लेन के उद्देश्य से राजगृह गये । महा मव धम्म सम्प्रदायो म 'यूनाधिक मात्रा म तपश्चर्या दिग्गयी दन से उन्हें एसा लगा कि उन्हें भी बगो हा तपश्चर्या करनी चाडिरे । इसलिये 'मत्तनिषान' के पञ्च-जा सन्त का अन्तिम भाषाम बुद्ध स्वय बह्म है कि अब म तपश्चर्या के लिय जा रहा हूँ । उस समय राजगृह के पारा और जो पहाडियाँ हैं उन पर निषध (जन) धम्म तपश्चर्या करते

ये ऐसा उत्कृष्ट अनामयो म तथा बौद्ध पिटकों में अनन्त स्थली पर मिलता है।

निग्रथ संप्रदाय के इतिहासिक निबन्धन तैलसर्व सायवर भगवान् पाश्वनाथ जी थे। इनका निर्वाण बुद्ध ने जन्म से पूर्व १९३ वर्ष में हुआ था। उनकी शिष्यपरम्परा के निग्रथा का अस्तित्व उम समय राजगृह में सर्वाधिक था।

तथागत गौतम बुद्ध निगठ नायपुत्त (थमण भगवान् महावीर) से प्रथम पदाहुए और प्रथम हो परिनिर्वाण प्राप्त किया। यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से अब निश्चय हो चुकी है। भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध समकालीन थे तथा उन दोनों के अपने अपने धर्म प्रचार का क्षेत्र एक ही रहा। कई वर्षों तक एक दूसरे से मिले बिना वे दोनों अपने-अपने सिद्धांतों का प्रचार करते रहे।

बुद्ध ने निग्रथों के तपप्रधान आचारों की अवहेलना की है— ऐसा वचन बौद्ध पिटकों में पाया जाता है। परन्तु बुद्ध ने पुनः अपनी बुद्धत्वप्राप्ति के पहले की तपदर्शना और चर्चा का जो वर्णन किया है उसमें साथ समकालीन निग्रथ आचार का जब हम मिलान करते हैं तथा कपिलवस्तु के निग्रथ आश्वक वृक्ष शाक्य जा कि भगवान् पार्श्व नाथ के निग्रथ धमणो का उपासक था उम का निर्देश सामन रखते हैं (सुत्त की अट्ठकथा में वृक्ष का गौतम बुद्ध का आश्रय कहा है) एक बौद्ध पिटको में पाय जाने वाले सास आचार और तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द जो केवल निग्रथ प्रवचन में ही पाय जाते हैं इन सब पर विचार करने हैं तो ऐसा मानन में कोई संदेह नहीं रहना कि तथागत गौतम बुद्ध ने भगवान् पाश्वनाथ की परम्परा को स्वीकार किया था। अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने भी अपनी अंतिम पुस्तक 'पाश्वनाथा का चातुर्वर्ग धर्म' (पृष्ठ २४, २६) में ऐसी ही मान्यता सूचित की है।

गीतम बुद्ध सारिपुत्त' मे बहने हैं कि 'म' बताता है कि मेरा सम्प्रतिष्ठा करा था' —

"म मया रहता था। मोक्षिक अचारों का पालन नहीं करता था। हृषी पर भिक्षा से कर खाता था। अगर कोई कहता कि 'मदन', दूसर आइय तो मैं नहीं मुनता था। बठ हृष स्थान पर ला कर न्यि हृष अन्न को, अपने लिए तयार किये हुए अन्न को और निमज्जन को मैं स्वीकार नहीं करता था। जिम वस्त्र मैं अन्न पकाया गया हा उगा बनन म अगर वह अन्न लाकर मुम न्या जाता ता म उसे ग्रहण नहीं करता था। नेत्री या इण्डे के उग पार रह कर बी मयी भिक्षा को म नहीं खाता था। आनणी म से अगर कोई खान का पन्ना ला कर न्या जाता तो म उस पन्ना नहीं करता था। आ व्यक्ति भोजन कर रहे हों और उन में म एक उठ कर भिक्षा दे तो मैं उस ग्रहण नहीं करता था। गर्भिणा अश्व का मूत्र पान करान वाली या पुरुष का साप एकाठ मवन करने वाली स्त्री म भी म भिक्षा नहीं खाता था। म या तीव-यात्रा म तयार किय गय अन्न की भिक्षा म नहीं लेता था। जहाँ कुत्ता खड़ा हो या मक्षियों का भीड़ और भित्तिनाहट हो वहाँ भिक्षा नहीं खाता था। मत्स्य, मांस, मुरा आदि वस्तुएँ नहीं लेता था। एक ही घर से भिक्षा लेकर एक ही प्राग पर मैं खाता था। या दो घरों से भिक्षा ले कर दो घरों पर रहता था और इन प्रकार सात दिन तक बड़ाठ हुए साठ घरों से भिक्षा ले कर साठ प्राग खा कर मैं रह जाता था। म एक बरछा भर अन्न भी लेता था और इस प्रकार सात दिन तक साठ बरछे अन्न ले कर उस पर निर्वाह करता था। एक दिन छाड़ कर यानी हर तीसरे दिन भोजन करता था। इस प्रकार उपवास की मर्यादा बड़ाठे-बड़ाठे सप्ताह में एक बार या पलवाह म एक बार भोजन किया करता था।

मैं बाड़ी मुँछे और बास छसाड़ खाता था। म लहा रह कर तपस्या करता था

तपस्या करता था।  
मेरे शरीर पर म

जैसे कोई तिरहुत बरस का तना अनार वर्षों की धूल से भर जाता है, मेरी देह यमी हो गया थी। पर मुझ ऐसा नहीं लगता था कि धूल की परतें मे स्वयं झाड़ लूँ या दूसरा कोई व्यक्ति मुझ हाथ से निराल द।

म बड़ी सावधानी से आता जाता था। पानी की बूँद पर भी मेरी तीव्र दया रहती थी। ऐसी विषम अवस्था में फरे हुए सूक्ष्म प्राणी का भी नाश मरे हाथों से न हो जावे इसके लिए मैं बहुत सावधानी रखता था। ऐसी मरी जुगुप्सा (हिंसा व प्रति अहंति) थी।

म किसी भयावन जगह में रहता था। जो कोई सासारिक प्राणी उस अरण्य में प्रवेश करता उसके रागट सड़ हो जाने से वह इतना भयभर होता था। जादा में मयानर हिमपात होने के समय में खुली जगह में रहता था और जिन में जगल में घुम जाता था। गर्मी के मौसम के अन्तिम माहीन में जिन व समय सली जगह में रहता था और रात को जगल में चला जाता था। (ध० शो० कृत भगवान बुद्ध पृष्ठ ६८-७१)

इस तपस्या के बारे में गौतम बुद्ध स्वयं कहते हैं— मरा शरीर (कुशलता थी) धरम सामा तक पहुँच गया था। जस अस्मी वर वाले की गाँठें, वसं हो मरे अङ्ग प्रयङ्ग हो गये थे। जसे ऊँ के पर मने हा मरा बूझा हो गया था। जसे गूथो की (ऊँची नीची) पानी वसे ही पीठ के काट हो गये थे। जसे छाल का पुरानी बड़ियाँ टट्टी मेंट्टी हो जाती है वसी ही मरी पासुलियाँ हा गयी थीं। जस गहरे कुण में तारा वसं हो मरी जसिं दिनाई देनी थी। जसे बच्छी तोडी हुई बडवी लोंकी इवा घुप में चुचर जाती है, मुर्मा छाती है वसे ही मरे मिर की छाल चुचर मुर्मा गयी थी। उस अनान स मर पीठ के अँद और पर की छाल बिल्लुल सट गयी थी। यदि भ्रंशाना या वेशाव करने के लिए उठता तो वहाँ बहरा वर निर्गच्छा। जब मैं भाषा का सहारा हुए हाथ से भाव का

भाषा से सडी अड बाके रोम झड़

—रुत धमक

कोई कहते

मेरा

वसा परिशुद्ध गौर चमक कर रंग नष्ट हो गया था ।' (ब्रह्मसूत्र १४८)

मुन श्या कि — यह दृश्य तुम्हारी है धीरे-धीरे का शांति  
देन पाये नहीं है अनपेक्षित है (तुम्हारा अनपेक्षित अनपेक्षित) ।  
और मन स्थूल आकार प्राप्त करना प्रारम्भ कर लिया ।

अन्त में ध्यानात्मक मन न यह निश्चय किया कि सादृश्यता  
विलक्षण निश्चय है । अन्त में ध्यानात्मक मन योग कर लिया ।

इस उपपत्ति का निश्चय म मन मान लिया है कि मनम बुद्ध के परम  
निश्चय के बाद आकार का नाम प्राप्ति पाणिपति के योग रहकर उन  
के प्रत्यक्ष का प्रियाए माया तथा उनकी मायात्मिका के अनुसार  
मन प्राप्ति की प्रिया बिन्दु पर वह वह म ऊपर यह दूर परम  
मनप्राप्ति म प्राप्ति दृष्ट । म प्रकार छ मान वही एक जनेक परम  
मनप्राप्ति म प्राप्ति होकर छाया मन । अर्थात् पुर पुर पुरों की  
ध्यानात्मक सादृश्य का भाग सादृश्य कर अपना विचारप्राप्ति छ एक मन  
मनप्राप्ति का सादृश्यता का । वह मनप्राप्ति आदर सादृश्य के नाम म प्राप्ति  
है ।



## बौद्ध जैन मवाद में मांसाहार निषेध

जनागम सूत्रवृत्तान्त के दमक धन स्वयं के छ जययन म एन प्रमग आना है जा इग प्रकार ३ —

थम भगवान मन्वीर का अनुमाग राजगम म था । क्षतुमसि के दान भी भगवान राजगह म धमप्रचाराय न्हर । उग मनन प्रकार का आगतीत फल नुआ ।

एक बार भगवान् के गिप्य आन्वमनि भगवान का वन्दन करन के लिए गुणगील क्षत्य मे जा रह थ । रास्ते म उनका गायकमुनि के भिना मे इस प्रकार वार्तालाप हुआ : उम वातालाप म जीवहिंसा और मांसाहार सम्बन्धी जना का क्या सिद्धान्त है इसका भी खुलासा आन्वमनि न किया है जो कि हम प्रकार है — निग्रथ आन्वमनि न गायकमुनि के भिक्षु स कहा बि —

जीवा की बले काम हिंसा करना सयतो (मुनियों) के लिए मरणा अपीग्य है । जो ऐसे कामा का उपदेश दत हैं और जो उसे सुन कर उचित सममत हैं व इनो अनुचित काम करन वाले हैं ।

‘महागय’ इस सिद्धांत से ता तत्त्वज्ञान नहीं पर सबन लोक का परामलकवन प्रयक्ष नहीं कर सने । भिक्षुजन ! जो धमण शुद्ध आहार करन हैं जीवा के कमबिपाककी रिता करते हुए आहार विधि के प्पा का टाग्त हैं और निष्कपन वचन वाला हैं ये ही मयत हैं और यहा मयता का धम है ।

जिनके हाथ न्ह म रग हैं ऐसे जमयन मनुष्य दा हजार बोधिसत्व (बौद्ध) भिक्षुआ का नित्य भानन करान हुए भा यहाँ निना के पान

बनते हैं और परलोक में सुखति के अधिकारी बनते हैं। और जो यह कहते हैं कि बड़ बकरे का मांस और मूत्र-मूत पर पाक कर तयार विधे हुए मांस के भोजन के लिए कोई नियमन दे ता हम उस मांस को खा सकते हैं और हम में हम कोई पाप नहीं आता व अनायधर्मों और रोग-रोगी हैं। भोजन करने वाले पाप का न जानते हुए भा पाप का आवरण करते हैं। जो कुछ पुरुष हैं व मन से भी एक आगर का इच्छा नष्टा करने और न ही हम मिथ्या उपाय बोलते हैं।

जब मुनि राज जीवा का दया की भावना पाप पाप का वजन करते हुए दाप की गता से भागते आगर को प्रणम नष्टा करते। ममार में सयना का लोभम है। इस आगरगुहिक रूप ममाधि और शीत गुण का प्राप्त कर जो वराय भाग से निग्रह (जब मुनि) धर्म का ध्यान करते हैं यही उत्तम पाना मुनि इस पाप में कीर्ति प्राप्त करने हैं।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि निग्रह श्रमण सत्ता इस बात की सावधानी रखते हैं कि उनके द्वारा छोटे-से छोट बिगड़ों की भा हिमा न हो। इसीलिये वे रात्रि को भोजन भी नहीं करते यानी मूर्च्छा के बाद वे कोई वस्तु खाने पीने नहीं। रात्रि को शीत भी नहीं जागते इसलिये कि उस पर पनमा के गिरने की सम्भावना रहती है। वे उठते-बैठते सोते जागते घूमे फिरते खाने-पीते सब अवस्थाओं में सदा इन बात की सावधानी रखते हैं कि किसी भी प्रकार से बड़े से छोट-से-छोटे जीव जन्तु की भी हिमा न हो जाय। वे वर्षा ऋतु में ग्रामान्तर नहीं जाते पर हा नगर अथवा ग्राम में नाम करते हैं क्योंकि इस ऋतु में अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जान से ग्रामान्तर जान-जान में हिमा होना सम्भव है। वे छ जीवनिवाय का यत्न पूरा रखा करते हैं।

इस स्तम्भ में निग्रह मनि आदक के महाद में बड़ा स्पष्ट वजन है कि उन्होंने बौद्ध भिक्षु का मासाहार में दाप बतलाने हुए बतलाया है प्राण्यग मासाहार करने वाला व्यक्ति न तो सयमी ही बन सकता है और

न वह जानवान् हो कहला सकता है एवं न वह स्वपरवा कल्याण हा कर सकता है ! ऐसी अवस्था में भाग की प्राप्ति भी कभी नहीं हो सकती ।

निग्रन्ध धमण के लिये नव काण्डिक (हिंसा करना नही कराना नहीं जीर करन यात्र का भग्न जानना नही । मन से उहा करना कचा से नहीं करना और माया से नहीं करना इत्यादि । इस प्रकार ३ × ३ = ९ बोटिक) अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या को व्यवहार में लाने के लिये बाह्य प्रवृत्ति को विनष्ट निषिद्धित कर और अहिंसा तथा मामात्रा आदि का संकथा निग्रन्ध किया है । निग्रन्ध धमणा की चर्चा सदा से ही उग्र चर्चा आ रही है और उनके त्याग समय सप मया अहिंसा का स्वरूप अनुपम एवं जगदीश्वर रहता आया है । इसलिए हमने चारित्र का गहरी छाप सत्त्वगान जनता पर पाना स्वाभाविक था । यही कारण है कि निग्रन्ध धमणों की चर्चा या उस समय के मानव समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव था जिससे आकर्षित होकर शाक्य मुनि भी न बुद्ध न गौतमीय निग्रन्ध परम्परा में दीक्षा ग्रहण की तथा उनके सत्त्वज्ञान को जाना । उन्होंने अपनी निग्रन्धचर्चा में प्रवृत्त करने से पहले स्पष्ट किया है कि—“म प्रसिद्ध धमण नायकों का सत्त्वज्ञान जान लेने के उद्देश्य से राजगृह जाता हूँ ।” वहाँ जाकर निग्रन्ध धम में बोधित होकर जिस चर्चा का उन्होंने आचरण किया है उसमें उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख किया है कि—“उस अवस्था में मैं म मरता— आदि का सेवन नहीं करता था ।” इसने यह स्पष्ट है कि—  
 १. विचार म १ मत्स्य मानादि के मत्स्य का  
 सदा,





## द्वितीय खण्ड

निगूढ नायपुत्र अमर भगवान् महावीर पर  
मासाहार के आक्षेप का निराकरण



## महाश्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मामाहार क आरोप का निराकरण

जना क चौबवें जग श्री भगवतीसूत्र ने त्रिम पात्र का अर्थ करने हुए श्रमण भगवान् महावीर का मामांगरी सिद्ध करने का जो अनुचित चर्चा की गयी है उसके विषय में यम विचित्र धर्षणा का निरमल करना नितान्त आवश्यक है जिसमें पाठक साम्यविश्वास का समझ सके ।

भगवता सूत्र क पन्द्रहव गति में मामांग्र का वर्णन आता है । उसका मभिप्ल माराग य है —

मामांग्र कहते भगवान् महावीर का पिप्य या और भगवान् क साथ एक जग छ वर्षों तक रहा । अग्न होन के बाद उमन नगरिया सिद्ध का तथा अंग्रान् निमित्त का अभ्यास करके अपन आप का उचन हुआ की उद्घाटना की । एक बार वह श्रावस्ती नगर में आया और वहाँ अपन आप का भवज रूप में प्रसिद्ध करने लया । जनता में द्रुम बात का चर्चा हुआ लगा । बाग में उमा नगरी में भगवान् महावीर स्वामी पधार । नगर निवासिया न मामांग्र की भवजता का बात भगवान् महावीर क मध्य पिप्य की दृष्टभूति गौतम स्वामी से पूछा । गौतम स्वामी न प्रथम महावीर से पूछा । तब प्रथम न मामांग्र का गारी जीवन क्या कहें कनारी तथा मामांग्र न भवजत्व (निन प) प्राप्त नहीं किया यह भी कहा । मामांग्र का यं जावनचरित्र लाया में चर्चा का विषय बन गया । यं बात मामांग्र के काना तक भा पहुची तब वह बहुत प्राधित हुआ । तब में जग मुना एक बार वह प्रथम महावीर स्वामी





## महाश्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मासाहार क आरोप का निराकरण

जना के पाँचवें अंग था भगवान्मूत्र व जिम पाठ का अर्थ करने हुए श्रमण भगवान् महावीर का मांसाहारी सिद्ध कराने का था अनुचित थापा की गयी है उसके विषय में इस भिन्नित रूपना का निराकरण करना नितान्त आवश्यक है त्रिमय पाठ्य वाच्यविज्ञता का समग्र मर्म ।

भगवन्ती सूत्र व पाठ्य पाठ्य म गोपालक का ध्यान आता है ।  
उमका मणित्त मारण व है —

गोपालक पहुँचे भगवान् महावीर का गिर्य का और भगवान् के साथ एक भग्न छ वधो तक रण । अल्प होन के बाद उमन मजाग्या सिद्ध का तथा अष्टाङ्ग निमित्त का अभ्यास करने आन आन का मवन हान का उद्घाटना की । एक बार वह श्रावस्ती नगरी म आया और वहाँ अपने साथ का मवन रूप में प्रसिद्ध करने गया । जनता म हुए बात का चला हान गयी । बाद म उमा नगरी म भगवान् महावीर स्वामी पधारे । नगर निवागिया न गोपालक की मवजता की बात भगवान् महावीर के मध्य गिर्य था इन्द्रभूति गौतम स्वामी म पूछा । गौतम स्वामी न प्रम महावीर स पूछा । तब उम न गोपालक का गारा जीवन क्या वत् मुनायी तथा गोपालक न सवनत्व (जिन वत्) प्राप्त नहीं किया यह भी कहा । गोपालक का वत् जीवनचरित्र श्रमण म चर्चा का विषय बन गया । यह बात गोपालक के बाना तब भा पहुँचा तब वह बहुत आधित हुआ । तब म जला मना एक बार वह प्रम महावीर स्वामी

ने पाग पाया और वहाँ अपने वास्तविक स्वरूप का छिपान का प्रयत्न किया। तब भगवान् ने जोड़ीव बान भी, उसे कहा। इससे वह और भी क्राधित हो गया। यह देखकर उगेगा माधु भगवाने तब उसने उनपर तंजालिया छाड़कर उन्हें जगह पर भस्म कर दिया। भगवान् ने उगे समझाया परन्तु परिणाम उठा निवला।

उसने भगवान् पर भी तंजालिया छोड़ी। यह तंजालिया भगवान् का स्पर्श करके बापिस गोताव्व के गरीर में पवना कर गयी और उस तंजालिया की जलन से माशाव्व सातवा रात्रि को पित्तज्वर से दाह में मृदु को प्राप्त हो गया।

इस तंजालिया के स्पर्शमात्र से भगवान् महावीर का पित्तज्वर तथा लूके दस्त (पचिगा) हान हो गया। यह देखकर प्रजा का तथा अनेक साधुओं को बहुत चिंता हो गया और सबके यह खान फल गयी कि भगवान् महावीर छ मास में यह त्याग देंगे। जिसकी प्रभु पर अत्यन्त राग था ऐसा सिंह नाम का अणगर (वन श्रमण) जो जगल में ध्यान कर रहा था, उसने भी कहा यह बात सुनी। वह दुःखी होकर फूट फूट कर रान लगा। भगवान् ने अपने गान द्वारा इस बात का ज्ञान कर सिंह मुनि को घूमरे माध द्वारा अपने पास बुलाया और उसे सान्त्वना दी। जनता तथा मुनिजनों की चिन्ता का दूर करने के लिए भगवान् ने सिंह मुनि से कहा—

ह सिंह! तुम मडिक ग्राम नगर में जाओ, वही गृहपति की पत्नी रेपती ने दो पाक तयार किए हुए हैं। उनमें एक भरे लिए बनाया हुआ तथा दूसरा अपने घर के लिये बना कर रखा हुआ है। जो पाक भरे लिए बनाया है उससे प्रयोजन नहीं (यह मत लाना)। परन्तु जो दूसरा उसने अपने लिए बना कर रखा हुआ है उसे ले आओ।

भगवान् ने वह पाक आसक्ति से रहित होकर भाया और पीड़ा शांत हुई।

यहाँ उपसुक्त दो पाठों का जोड़ा पाठ सम्भवतः न किया है। उनका बारम्बार किया जो भी आसक्ति नहीं है। वही भवदासाय है। परन्तु उन दोनों के अर्थ अलग हैं। ये दो अलग विचारधाराएँ हैं। मणिपूरा का अर्थ वही है। इसका अर्थ वही है। इसका अर्थ वही है।

( ७ )

## जिवादास्पद सूत्रपाठ और उसके अर्थ के सिधे जन विद्वानों के मत

सूत्र म विधि म न पाठ

त गच्छतु यः शुभं भवेत् । मन्त्रिणाम् नगरं देवतां गच्छ-  
तिनाम् गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम्  
गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम्  
गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम्  
(भगवता सूत्र दातव्यं १५)

( ८ )

अन्य शास्त्रों में न नवीना (नौ आगमों) के दातावाक्य महान् गमनं  
विनाश आचार्य अमर्यवर्ग १ वमन अग सूत्रा गच्छतु तस्य न देवताम्  
तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम् गच्छतु तस्य न देवताम्  
प्रमू महावीर के गमन म नव ( ) अग न गच्छतु तस्य न देवताम्  
इसका अर्थ वही है। उन तीनों अर्थों में किसी किसी कारण से ऐसा कहा  
करने में शीर्षक नामक उपान्त किया हुआ पाठ है। उभे से  
महर्षि का भाषा अर्थ भी एक है। उपसुक्त विचार वाक्य आहार  
प्रमू का अर्थ के कारण ऐसा न तावक नामक का अर्थ किया या ऐसा  
पाठ है। उस प्रमू का उद्देश्य करते हुए नवीनाशास्त्रों के अमर्यवर्ग  
न द्वय विचार वाक्य सूत्रपाठ का द्वय प्रकार अर्थ किया है —

‘तथा गच्छतु ॥ नगरमप्यत्र देवताभिधानया गृहपतिपत्न्या मन्त्रं

हैं कूलीडफनारीरे उपसृते न च साम्यां प्रयोजन, तपःमदस्ति  
तन्महे परिवर्तित मार्जारमिवानस्य वायोनिवत्तिकारणं कुक्कुडमासक  
—बीजपूरककटाहमित्यथ तदाहर तेन न प्रयोजनमिति ।”

(ठाणाग सू० १९१)

अर्थात्— तुम नगर में जाओ रेवता नाम की गन्पति की भायां  
में मर गिऐ ॥ कू माण्ड फल (पेठ) सम्भार करके तयार किये हैं,  
उनका प्रयोजन नहीं परन्तु अगर घर में मार्जार नामक वायु की निवृत्ति  
करने वाग कीजारे कल स गग है व० ॥ जाओ। उनकर सुम प्रयोजन  
है। (ठाणाग सूत्र म १ ।)

इस उपयुक्त अर्थ में यह बात स्पष्ट है कि ठाणाग जा गग में अन  
शान्ति का अर्थ श्रीअभयवसूति ने स्पष्ट रूप में वनस्पतिपरक किया है  
इंगलिय यही अर्थ यथाय रूप में उक्त भाष्य का।

(ग)

इहां टीकाकार जनाय अभयवसरि ने ठाणागजी की टीका  
लिखन के बाद पञ्चमाय भगवती जी गग की सेवा दि० म० ११२८  
में लिखी। इसमें योगात्क के प्रगमवाक पदार्थ वाक्य में भी जो  
उक्त स्वयं भाष्य अर्थ था वही किया। किन्तु एक निष्पत्ति टीकाकार होन  
के नाते उनका समय में काँफ काँफ व्यक्ति इन शब्दों में न स्थल दष्टि में  
फर्कित होन वाले प्राणीवाचक अर्थ भी मानते हुए यह वक्तव्य के लिए  
उन्होंने यह बात भी अपना टीका में लिखा। ऐसा लिखत हुए भी यह  
बात उक्त स्वयं भाष्य नहीं थी। यद्यपि यह बात उक्त भाष्य हानी तो वे  
अपमानमेवाय केचित्तमयन्ते—एसा न लिखत किन्तु इस अर्थ को  
वर्त्ता करके स्पष्ट करन की चेष्टा करते। न तो उन्होंने कहीं कोई चर्चा  
होती है और न ही ऐसा अर्थ किया है। इसमें यह स्पष्ट है कि उक्त  
स्वयं इन गण्य का अर्थ प्राणीवाचक भाष्य नहीं था यह निश्चित है। उन्हें  
स्वयं जो अर्थ भाष्य था उसी का उत्तर उन्हीं ठाणाग जी में किया

है तथा यन् भी यमा नी अय विया है। इसलिये वनस्पतिपरक अथ ही वाय्विक है।

## श्री भगवती सूत्र के विवादास्पद सूत्रपाठ की टीका

‘बुधे कथोया’ इत्यादि—धूपमाणमेवाय केचित्तमप्यने । अथे  
 स्वाहु कपोतक—यसि विगद्यस्तद्वद य फले वणमाद्यम्याले कपोत  
 कूष्माण्डे ह्रस्व कपाले कपोतके त थ ते गरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात्  
 कपोतकगरीरे अथवा कपोतकगरीरे इव घनरवणसाधम्यादिव कपालक-  
 गरीरे कूष्माण्डफले एव ते उपकृते—सन्कृते ‘तहिनो अटूठो’ ति बहु  
 पापवात् । ‘पारिभाषित’ ति परिवर्तित ह्यस्तनमिमथ इत्यादिरेपि  
 कचित् धूपमाणमेवाय मयने । अथ स्वाहु—‘मज्जारकडू’ मार्जारो  
 वापविगद्यस्तद्वदुपगममाय कत मस्तुत मार्जारकृत अपरे स्वाहु—मार्जारी-  
 विरालिकाभिधानो वनस्पतिजिगद्यस्तन कृत—भान्ति यत्तथा किं ता ?  
 इत्याहु—‘कुबुटकमांसक’ बीजपूरक बटाहम ‘आहुराहि’ ति निरवद्य  
 स्थान्ति ।

अर्थान—‘म जिय ह सि’ । तुम यदिक शाय नाम क जाण्ड म क  
 पनि की भार्या खना के घर जाया । रहा उम न म जिय (बाई-का) दुय  
 कथोय सरारा का प्राणापरक अथ भा मानत है परन्तु अय वन्न है कि)  
 दो कुष्माण्ड फल (पठ के फल) तयार किए हैं उन से मुझ प्रयाजन नहा  
 रमा कि इस लाना बहुत दार का कारण है (निग्रथ धमण क निमित्त  
 ना आहार तयार किया जाना है ऐसा जानर जन मात्र का लना नये  
 कराना इसलिये ऐसा आवाकर्मोपेड का पाक जा-यमथ मगवान मयावीर  
 के निमित्त बनाया गया था उस गन के लिये बना कर दिया) परन्तु इस  
 क इलावा दूसरा जो पाव उहोन जनन लिये कले का बना कर रखा  
 हुआ है वह मज्जारकडू (इस के लिये भी ऐसा मुद्रा है कि कूट-बाई  
 इस का प्राणीपरक अथ मानत है परन्तु अय सब

माझार नामक वायु का क्षाति करने वाला अथ आचार्यों का कहना है कि विरगिरि नामक वास्पति से भावना किया हुआ बीजाराधान है उस से जाता उस से मूल प्रयोजना है ।

श्रीअभयवसूरि ने इस उपपत्ति का नाम (नति) म लिखा है कि मुनिते है कि का-को-कुवे बयोवसरीरा और मञ्जारकट्ट कुबहुड भसए वा अथ प्राणीपरक करने है । इस से यह बात सा स्पष्ट है कि अथ जना चाय और उन समय के आम विद्वान इन शब्दों का अथ वनस्पतिपरक करते थे और यही अथ आचार्य श्रीअभयदेवसूरि को भी भास था । हमारा इन धारणा का पट्टि (१) शृणांग सूत्र का गङ्गपति की भार्या देवती के परिचय में मूल पाठ की टीका है । (२) इस पाठ में भी स्पष्ट है कि का-को-कुवे अथ भी करते हैं । यदि उन का अपना भी यही मत होता था तो वे गुण न लिख कर इन शब्दों का प्राणीपरक अथ करके वनस्पतिपरक अथ के साथ श्रुयमाणमेवाथ लिखते । इस में भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य अभयवसूरि को भी वनस्पतिपरक अथ ही भास था । (३) इस पाठ के विषय में इन शब्दों का भासपरक अथ किसी भी अथ उपपत्ति टीकाओं में नहीं मिलता । (४) इन शब्दों के अथ वनस्पतिपरक ही होता चाहिये और यही अथ टीका है इस विषय की पट्टि के नियम हम अथ आचार्यों के मत भी दे देना उचित समझते हैं ।

( ग )

विक्रम संवत् ११८१ पाटण में कण्ठके के राज्य समय में जनाचार्य भगिचन्द्रसूरि ने प्राकृत भाषा में तीन ठाण्ड इतिहासभाष्य महावीर चरित रचता की है जो ग्रंथ आत्मानन्द ग्रंथ रत्न भाषा ग्रंथ न० ५८ भावनगर का जने आत्मानन्द समा का उपरक से प्रि सं० १९३३ में प्रकाशित हुआ है । उसके पृष्ठ ८४ में यह अविवार भाषा न० १९ ० से ३५ तक इस प्रकार वर्णन है ।

‘ता गच्छ तुम विद्विगमम मगाहि देवई भस ।

गाहावईण कज्जे पज्जसिय ओसह कप्प ॥१९३०॥’





जा दत्तचन्द्र लालभाई पुस्तकालय फंड मूरत से प्रकाशित हो चुका है ।  
उपरोक्त प्रस्ताव ८ एच २८२ २८३ में वामान चर्चस्मरण विषय पर प्रकाश  
हालत हुआ वृत्त है । वहीं मित्र अणुगार का प्राधान्य से कल्प्य औपनि  
स्वीकार करने के लिए भगवान् मन्वीर सम्मत होने पर भी अपने  
निमित्त में तयार को नुहें औरध महा क पनी तथा साधनामाधारी  
मनोदा को अपने आचरण में सूचित करते हैं ।

‘अह एव ता इहेष नयरे रेवति साहावइणीए समीध बचवाहि । ताए  
य मम निमित्त ज पुत्र ओमह उवकयडिय त परिहरिऊन इयर अणुणी  
निमित्त निष्काइय आनहि ति ।

भाषा—[ह मित्र ! ] यदि तथा भी है या इमा नगर में (मित्र  
ग्राम में) रवनी नाम की गणपति का पत्नी के गर्भोपजा उसने मेरे निमित्त  
जो पहले जीपर समार का हुआ है उस छात्र कर दूसरी (जीपध) जो उस  
ने अपने निमित्त तैयार की है वह है वरणा । भगवान् महाधार के लिए  
औपनिदान दान से यह भवन बड़ाई का दवमति है इत्यादि कहा  
विस्तृत पण है ।

( - )

स्वतः सत्यमप्राप्तमपि अनुगामन का नाव्य साहित्य रचन चाल  
मुद्रमिद्ध कलिनाम्भवा जापाय श्री हेमचन्द्र ने विषय की सरहकी  
गतांग में विदितमप्राप्तपुस्तकमित्र मन्वीर रचा है जिसके  
अन्तर्गत मन्वीरमहोदय द्वारा दत्तचन्द्रभाषा भगवान् मन्वीर का चरित्र  
है । यह ग्रन्थ भावनगर से जनधर्म प्रचारक मन्वीर विषय मन्वीर १०६५  
में प्रकाशित किया है । उससे आठव मय वरणाव ५४५ में ५५२ में  
चालू चर्चस्मरण विषय पर स्पष्ट प्रकाश डाला है ।

मादुरां दुःखशास्त्रं ततः स्वामिनाक्षस्य भयजम् ।

स्वामिन पीडित इष्टं नहि क्षमामपि क्षमा ॥५४९॥

तस्योपराधात् स्वाम्युष रेवत्या धेष्टिभाषया ।  
 दक्ष कृष्णाङ्कटाहो यो मह्य त तु मा प्रही ॥५५०॥  
 बीजपूरकटाहोस्ति य पश्वा महहतव ।  
 त गहीत्वा समागच्छ हरिष्ये तेन वो धतिम ॥५५१॥  
 सिंहोऽगादथ रेवतीगर्भमुपादत्त प्रदत्त तया  
 कल्प्य भवजमानु तत्र वधये स्वण च हृष्ट सुर ।  
 तिहानीतमपास्य भपजवर तव वधमान प्रभु,  
 सद्य सपञ्चकारपार्वण्यगी प्रापद् वपु पाटकम् ॥५५२॥

भावार्थ—[ भविष्यमान मित्र अनया न कहा ] हे स्वामिन् ! हमारे  
 जनों के दुःख की गति के लिये तू आप भयज ग्रहण करो, क्योंकि मेरे  
 जनों से (भक्ता भक्ता न) स्वामा का सगवार या पालित नहीं देना  
 जाता । इसका अर्थ न स्वामा न (भगवान् भगवाँ न) कहा कि—सद  
 की भाषा रेवती न घर लिये ही कृष्णाङ्कटाह (पेठ का पाक) बनाया  
 है, उसे मत खाना । शिन्नु उसने अपने घर के लिये जा बीजपूर पटाह  
 (बीजाग पट्ट) बनाया है उसका आजा । उसका द्वारा तुम्हें धनि—  
 घोरप । हाथ । नत्पश्चात् मित्र (मुनि) रेवता थाविका क घर गया तथा  
 उसका द्वारा लिये जा कप एम भयज (ओषध) का भगवान् न स्वीकार  
 किया । वना श्रित हुए नो न गीघ्र ही स्वण वृष्टि की । सय ली  
 पकार का उन्मिन्न करने के लिये चन्द्रमा के समान वधमान प्रभु  
 (भगवान् भगवार) न सिंह के द्वारा गये हुए सम भयज का सवन किया ।  
 नत्पश्चात् गीघ्र ही गरीर का स्वम्यना प्राप्त की ।

इन उपपन्न उद्धरणों से यह बात स्पष्ट है कि यमण भगवान् भगवाँ  
 स्वामा न वनस्पति से तयार की गयी बीजकोही अपने रोग का शक्ति  
 के लिये सवन किया था । इस विवेचन में दिया गये व स ग ध  
 उद्धरणों के लिये शिष्टम की बारहवीं पताली के सम्बन्धों हैं तथा  
 उ ७५ ॥ २५१ ॥ गताली के हैं । इससे

समय के सभी जन आचार्य इस औपधिगान का मनस्पतिपरक ही मानते थे । इस बात को पुष्टि के लिये और भी अनन्य उल्लेख मिलते हैं । परन्तु विस्तारभय से इतना प्रमाण देना ही पर्याप्त है । मुनपु बिबुना ?

इस विषयन स यह भी स्पष्ट है कि जनाचार्य हजारों वर्षों से इन शब्दों का अर्थ 'वनस्पतिपरक' ही करते आये हैं । अतः निगड नायपुस्त (श्रमण भगवान् महावीर) ने अनन्य रोग को नाति के लिये अथवा अन्य भी किसी समय मासाहार कल्पि ग्रहण नहीं किया । भगवान् महावीर के विषय में भगवता गुरु के इस एक उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा उल्लेख जनागमों अथवा जन साहित्य में नहीं पाया जाता जिससे उनके विषय में मासाहार करन की अपेक्षा का होना सम्भव हो । इस चर्चास्पद सूत्रपाठ में भी यह बात स्पष्ट है कि इन शब्दों का अर्थ मासपरक नहीं किन्तु वनस्पतिपरक है ।

( २ )

### इस औपधदान पर दिगम्बर जैनो का मत

दिगम्बर जन सप्रणाम के विद्वान् भी रेवती (महिषासुर मारिची) के इस औपधदान की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं । रेवती ने जो तीर्थंकर नामकन उपाजन किया, उसका कारण भी यह औपधदान ही था ऐसा कहते हैं । वह लेख यह है ।

“रेवतीश्राविषया आधीरस्य औपधदान वक्तम् । तेनोपधिदान कालेन तीर्थकरनामकर्मोपाजितमत्त एव औपधिदानमपि दातव्यम् ।”

(हिन्दी जन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई का जन चरितमाला न० ६)

अब—रवनी आबिका न अमन ममवान महावीर स्वामा का औपध दान दिया । उन औपधदान देन मे उनन तीर्थकर नामकम उपासन दिया । अत औपधदान भो दना आनिय ।

इस उपासु कत उपास म भी यहा स्पष्ट है कि जनपम व सिंगी भी सम्प्रदाय अवका विभाग को इन औपध दान के विधय म—ठिर वर पाहु स्वताम्बर हा अथवा निगम्बर—काई मनभ मनी है । सभी को यह बात मान्य है कि यह औपध वनस्पति म ही नयन का मपी थी ।

( )

### जैन तीर्थकर का आचार

जो जीव नाथकर होने ॥ व तीर्थकर हान मे तान भव पहे वान स्थापक अवका माण्ड काण्ड (जीम प्रकार के कृष्य जिनका समावेश आण्ड कारण) म हुला है) का आराधन करव तीर्थकर नामकम का कप करत है । मही म काण्ड करव (मनुष्य पाकर) प्राय स्वम म उपासन होत है । वनी मे काण्ड करव मनुष्य क्षत्र म बहुत भारी समझि ओर परिवार वा उतम गुड राय कुल म अम स्त है । तीर्थकर होन वाले इन जीवों का माता के मम म ही अन्त्यमम तीन जान मति श्रुत अवधि होते हैं । इनका मगीन वक्षत्रपमनाराचमन्त्रन वाग होला है (यस के सणा दुइ होला है) इनका आयु अनपवनीय (किंगी धानाणि व निमित्त म लय नहुन वाग) हाती है । ये मनुमाव समार भी माता माया ममला का सवदा त्याग कर देते हैं । अनी दीणा का समय तीर्थकरा व जीव अपन जान म जी जान लेउ हैं । इनका गृहस्थवाहन भा प्राय अनामवन हाता है । दीणा उन मे लके सब पहे एक पय तक जान देकर, यदि माना पिता विद्यमान होला उनका जाना लेकर यह महात्मव पूर्व स्वयमव दीणा छट्ण करते हैं । पिता को गुद नहीं बनान वयाकि व मो स्वय हा पिताकी के गुद हान वाल हात हैं और जानवान है ।

मग प्रचार के पापजय मानसिक-वाचिक कारिय ध्यापारों का त्याग कर महात्मा अद्भुत तप करत हैं जिनमे चार धानी कमों का दाय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर के सवन सर्वज्ञी हान हैं फिर सगारतारक उपेग नेकर धर्मतीय की स्थापना करत हैं। एस महापुरुष तीयकर हान हैं।

तीयकर भगवान बन्स के उपचार की इच्छा न रखने हुए राजा एक शास्त्रण से चाबान पदन्त मग प्रकार के साध्य नर नारिया की एकात हितकारक, समारममुद्र म नारन धर्मोपेग दते हैं।

तीर्थकर भगवान के गुणों का पारावार नहो उावे गुण अपार हैं। अत सवदा ध्यान करना अमभव है फिर भा यग मभव म कुछ गुणों का उक्तव किया जाता है।

१ अनन्त केरगान, २ अनन्त करगान ३ अनन चारिय ४ अनन तप ५ अनन्त धन ६ पाँच अनन्त (दान लाभ भाग उपभोग तथा वीर्य) ७ अथि ८ सतोष ९ सरस्वता, १० निरमि मानिता ११ अयवता १२ मय १३ तयम १४ इन्द्रादितिपन १५ यज्ञचय १६ मया (जीर्वाहता का नवकाटिक त्याग) १७ परीय-कारिता १८ धातरागता (राम-द्वय गतिता) १९ गन्धु मित्रभाव रहित २० स्वयंपापाणाति समभाव २१ स्वानन पर समभाव २२ माताहार रहित २३ मदिराग्न रहित २४ अमदय (१ लान-वीर्य याग्य पदाय) मग्न रहित २५ अगम्यमन रहित २६ वदया के समु २७ दूर २८ वीर २९ धार ३० अगम्य ३१ परनिधा रहित ३२ अदनी स्तुति १ करे ३३ अपन विरोधि को भी तारन वा इत्यादि।

(१) मान्तीय (२) पातविरणीय, (३) गानारगोय (४) अतराय इन चार धानिया कमों के दाय करत के कारण १८ दातो से रहित होत हैं।

“गतरामा दान लाभ-वीर्य भोगोपभोगा,  
हासो रत्यरतो भातिर्जगत्ता गोक एव च॥



धमावृत्य करना (गणवाम का कठिनाई में से निकालना) । १० ११ १२  
 १३—अरिहन्त, आचार्य बहुश्रुत और शास्त्र के प्रति शुद्ध निष्ठापूर्वक  
 अनुराग रखना । १४ अवश्यव क्रिया का न छाटना (सामायिकानि छ  
 आवश्यकों का पालन करना) । १५ भागभाग की प्रभावना (आत्मा के  
 कल्याण के मार्ग का अपना जीवन में स्मरण तथा दूसरों का उत्तरा  
 उत्पन्न हस्तारघम का प्रभाव बढ़ाना) । १६ प्रवचनवात्मक (वीतराग  
 स्वतन्त्र कवचनों पर स्नेह-आय अनुराग होना) ।

इन उपयुक्त कार्यों में न एका अथवा अधिक कार्यों का करन में जीव  
 तीव्रकर पण का प्राप्त करन योग्य कर्म का व धन करता है । इन कर्म का  
 नाम है तीपकर नामकर्म ।

वीस स्थानवा का वगन नानाघम क्याय आदि आयमा म—

अरिहन्त सिद्ध पद्मपण-गृह पर बहुस्मृय-तपस्वीसु ।

पञ्चलया य तीस अभिक्रमणाणोवओण य ॥१॥

वसण विणए आवसए य सीलवए निरइयारे ।

एणलव सज्जिक्खियाए वेयावक्ख समाही य ॥२॥

अप्पुवणाण गृहण सुयभत्ती पवयण पभावणया ।

एएहि कारणाहि तित्थवरत्त लहइ जीवो ॥३॥

(आताधर्म कथांग अ० ८ सूत्र ६४)

अयत्त—१—अरिहन्तभक्ति २—सिद्धभक्ति ३—प्रवचनभक्ति,  
 ४—स्यक्ति (आचार्य) भक्ति ५—बहुश्रुतभक्ति ६—तपस्वी धर्मलता,  
 ७—निराग जान में उपयोग रखना ८—भाग (सम्पत्ति) का शुद्ध  
 रखना ९—विनय महित होना १०—सामायिक आदि आय-यका का  
 पालन करना ११—जनिवार रहित नील और घना का पालन करना  
 १२—संसार का क्षणभंगुर समझना १—शक्ति अनुसार तप करना,  
 १४—शक्ति अनुसार त्याग (दान) करना १५—शक्ति अनुसार  
 अनुविष्ट सध का तथा साधु का समाधि करना, (वसता करना जिनमें वे

स्वस्य रहें) १६—व्याप्यकरण (गुणवान् यन् कठिनाहं में प० हा ता उह वणिनाई में दूर करन का प्रयत्न करना), १७—अपूव (नये नये) ज्ञान का घट्टन करना, १८—गास्त्रम भक्ति हाना १९—प्रवचन म भक्ति हाना २०—तीर्थकर व सिद्धान्त का प्रचार करना। इन कारणों से जाव तीर्थकर नामरुम का बधन करना है।

उपायमूत्र में १६ कारण तथा आगम-नाशायम क्याग में २० कारण तापकर नामरुम बाधन व न्यि हैं। मोना म किमी भी प्रकार का भेन नहीं हैं। मूत्रकार न न० १० ११ १२ १३ म अरिन्त-आघाय-बहुधुन-शान्त को आगम में १२ ४ १ ६-७ अरिन्त-सिद्ध-प्रवचन-आघाय-म्यविर-बहुधुन-नपस्वी इस प्रकार विस्तार में ज्ञान भेन कर न्यि हैं। इसी प्रकार आगमकार न १७ १८ अपूव ज्ञान को घट्टन करना तथा गास्त्रमक्ति न भेन दिय हैं जबकि मूत्रकार न गास्त्रमक्ति म इन दोनो का समावेश करके १६ भेद कर न्यि हैं।

तापकर नामरुम के उपासन करन के लिए जात्रा भावनाए बन गई ल्यो हैं उन सब भावनाओं म मूत्रकार न 'ज्ञानविगुद्धि' का सब प्रथम रत्ना है। इसमें यह बतलाया है कि इन काम अथवा तात्ह भावनाओं म म 'ज्ञानविगुद्धि' मुख्य है। इसका अभाव में दूसरा मत्र भावनाए हा तो भी तापकर नाम' का उपासन नहा हा शक्ता और इसका सुदभाव म दूसरा भावनाए हा अथवा न हों तो भा तीर्थकर नामरुम का उपासन हा शक्ता है। (अज्ञान—यदि जाव का त्रिनापनिष्ट घन ॥ मरुवा अनुराग हा तो हा तीर्थकर गात्र का आश्रय हाना समभव है)।

गास्त्रा म तापकर नामरुम के आश्रय के उपयुक्त दानाणि अग्न अग्न कारण जा बतलाव है उनका अभिप्राय यही है कि जीव सम्प्राप्तन।

१—नामनिम्न नाश नाणथ विणा न दुनि चरणगुणा।

अगुनिस्म नतिन मोक्षा नयि जमावस्म निवाण ॥

(उत्तराध्ययन अ० २८ सू० ३०)



को प्राप्त करने के पश्चात् चीन व्यवसायोन्मुख भावनाओं में से किसी भी एक-दो व्यवसाय अधिक भावनाओं के द्वारा तीव्रतर नामकम का उपाजन कर सकता है। सम्पूर्णजन के अभाव में मिथ्यादृष्टि अन्य किसी भी भावनाओं का आचरण में आता हुआ कदापि तीव्रतर नामकम उपाजन नहीं कर सकता।

तीव्रतर भगवान् का मंगिप्त आचार तथा विचार जानने के लिए देखें प्रथम खण्ड में स्वस्म न० ४ से ७ तक। इन सब स्वस्मों का पढ़ने से पाठक स्वयं जान लेंगे कि तीव्रतरत्व भगवान्-भगवद्गीता भगवान् महात्मा स्वामी के आचार। तथा विचारों का अनुसरण करने से यह बात स्पष्ट है कि यद्यपि ना योगाचार का प्रश्न नहीं कर सकते थे।

( ४१ )

## निग्रंथ धमण (मुनि) तथा निग्रंथ धमणोपामक (धायक) का आचार

इस निग्रंथ के प्रथम सर्ग में स्तम्भ न० ३ में ७ छंद इस रूप में दिये हैं कि १—उन तीषर के आचार २—निग्रंथ धमण, तथा ३—निग्रंथ धायक-आविवाधा (नानो) के आचार विचार से यह बात स्पष्ट है कि उन स्तम्भ तथा आचार को धर्म्यगान पुरव धारित में उतारने वाला कोई भी व्यक्ति—फिर वह चाहे तीषर हो धमण हो अथवा धनपारी धायक हो—कदापि मत्स्य मास मन्त्रि आदि पण्यों का गवने नहीं कर सकता। इन पण्यों का जनामा में जमण्ड कहा है और एत अध्वय पण्यों के गवने का मवने निग्रंथ किया है। इनका जोरध रूप में भी तीषर अथवा निग्रंथ धमण प्रमाण बना कर सकते।

इस औषध को सेवन करने वाले, औषध लाने वाले तथा औषध बनाने और देने वाली का जीवन परिचय

१—वीतराम सनज्ञ सबदों तोषकर भगवान् वधमान महावीर स्वामी ने रक्त पित्त (पेचिश) तथा ग्लिसिस्वर की व्याधि को मिटान के लिए इस औषध का सेवन किया। २—विप्रथम भगवत् सिंह ने यह औषध खाकर ली। ३—रेवती श्राविका ने इस औषध को अपने घर के लिए बनाया और मिष्ट मुनि को भगवान् महावीर के रोगनाशन के लिए प्रदान किया।

१—सब प्रथम भगवत् भगवान् महावीर के सम्बन्ध में विचार करते हैं—

भगवान् महावीर गौतम बुद्ध के गमवासीन थे। दोनों धर्म संप्रदाय के समर्थक थे। फिर भी माना कि अंतर को जाने बिना हम उनका जाचार विचार सम्बन्धी किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकते।

(क) पहला अंतर तो यह है कि बुद्ध ने मन्त्राभिनिष्क्रमण से लेकर अपना नया मार्ग धर्मचक्र प्रवर्तन किया, सब तरफ से छ वर्षों में उस समय प्रचलित भिन्न भिन्न तपस्वी और योगी संप्रदायों का एक एक करके स्वीकार परिणाम किया। जनम अपने विचारों के अनुरूप एक नया ही मार्ग स्थापित किया जबकि महावीर का कुलपरम्परा से आ धर्म-मार्ग प्राप्त था वह उसे लेकर बाग मंत्र और उग्र धर्म में अपनी माहजिक विग्लिष्ट भानदृष्टि और दृष्टि के बालकी परिस्थिति ने अनुसार सुधार या शुद्धि की। बुद्ध का मार्ग नया धर्म-स्थापन था तो महावीर का मार्ग पाचान माल से चले आने हुए जनधर्म का पुनर्संरुद्ध बनाना था।

(त) बुद्ध ने बुद्धत्व की प्राप्ति ग पाने निश्चय ही के आकांक्षित  
 लक्ष्य की बाद में इसमें ऊब कर उन्होंने तपस्वियों का — इति  
 और तपस्वियों बुद्धत्व प्राप्ति उपायों का खंडन कर दिया  
 था। तब उन्होंने निग्रहों के तपस्वानों आचारों की प्रशंसा की है।  
 कहा आकांक्षित भी था। भगवान् महाशार के मतों का खंडन  
 मन्त्राज्ञा चक्र आदि साधक भगवान् पाश्चात्य के इतिहास में  
 भगवान् महाशार का नियम पाश्चात्यिक नियमों का है।  
 वही भी निग्रहों के मोक्षिक आचार एवं तपस्वानों की प्रशंसा  
 करता है। प्रमुने निग्रहों के परम्परागत नहीं करके इन्होंने  
 अपनाकर अपने जीवन के द्वारा उन का धर्म का उद्धार  
 किया है।

बाध्य होना पड़ा जिससे उनके जीवन में वे गरीब मान जाते सम्प्रदाय  
मजबूत हुआ रहा और न खप ही रहा। जिससे परिणामस्वरूप वे अहिंसा  
तत्त्व से अग्रिमधिकार दूर हो गए।

परंतु महावीर का तप शूर्य जगमा नहा था। व जानन थे कि यत् तप व अताप से सम्पत्ति प्राप्त न होई ता दूसरा भी मुक्त-मुक्ति का जादुनि द्वाकर अपना मुक्त मुक्ति प्राप्त का जालमा रूपा और उगाता यह यह हुआ कि समय १००० वर्षों का। इस प्रकार समय व अभाव म बीर तप भा १०००० का तरा विराम है।

(क) "या उवा मावान मगवान मयम और तप की उत्कृष्टता से ज्ञान आप की निस्तारो गय तथा-तथा न अस्मितातस्व व अधिवासिद्विजित गहधन मम या या उनका सम्भार भाति वस्त्र तथा और उनका प्रभाव जात-भाग व गीता-र आन आप पडन गया । मानम नाम्र के निमम के अनुसार एव यविन व अन्तर दन्वान ह न यात्रा वस्ति व प्रभाव आम पाग के लाया पर ज्ञान-जनज्ञान म नृप बिना गहो रहना । परन्तु बद्ध तप और मयम का त्याग दन व मारण अस्मिता तस्व का पूर्ण रूप म अनन जायन म उतारन म जगमथ रह । उनपर अस्मिता तस्व उपरान मात्र या वर र गया । परन्तु अपन और अपन अनुयायियों व आचरण म इसे पूर्ण रूप मे न उतार सक । जत इतना मह अस्मिता मिद्धात थापि हायर रह गया ।

(क) अज्ञान का सावनीय घम दीप तपस्वा भगवान् मन्मथीर में  
परिष्कृत हो गया था। सन् उनके सांस्कृतिक जीवन का प्रभाव से मगप  
और विवेक दंग का पूरवातीन मलिन वायुमण्डल धीरे-धीरे गुड्ड हाने  
रमा और यन् विहिन पशु उन्नी मया का सन्ध के लिए दंग निमाला मिन्  
गया। भौमाहारिया की सन्ध्या में एकदम कभी होन लगी। जो राग  
भौमाहारी ये उनका जन माधारण अवहलना की दृष्टि से देखन लग।  
उम समय के अन्ध सप्रणया पर आपने अहिमा यम की गहरी छाप पड़ी

यो। बुद्ध के मध्यम मार्ग का प्रचार पशु-पक्षी को बन्धन म सुख ता  
हृमा परन्तु माताहारा के प्रचार को न रोक सका और स्वयं भी माया  
शरीर बन गया।

(छ) भगवान् महावीर न त्याग और तपस्या के नाम पर मृद  
गियिगचार के स्थान पर मज्ज त्याग और सत्त्वही तपस्या का प्रतिष्ठा  
करके भाग की जगत् याग के मन्दिर का वायुमन्त्र चारों ओर उगान  
विया। परन्तु बुद्ध न मज्ज त्याग और तप का न समझन के कारण  
इतका भवन्ता कर स्थान-स्थान पर क्या आज्ञाचना की है।

(ज) निग्रय तपस्या के अन्त करन के पीछे बुद्ध का मूर्च्छि मुद्रय  
यहां रती है कि तप यह वायव्य है इन्द्रिय और देहमन मान है  
उन्हे द्वारा दुःख सन्त करन का अभ्यास ता करता है लेकिन उसमें कोई  
आध्यात्मिक गुडि और चित्तवृत्ति का निवारण नहीं होता इसलिए  
देहमन या वायव्य मिथ्या है।

भगवान् महावीर न भा यही कहा है कि देहमन या वायव्य  
विना हा उप क्यों न हो पर मूर्च्छि उमना उपयाग आध्यात्मिक गुडि  
और चित्तवृत्ति के निवारण म नही हाता तो वह देहमन या वायव्य  
मिथ्या है।

इस का मतलब ना यही हुआ कि आध्यात्मिक गुडि के विना सम्बन्ध  
वाली तपस्या भगवान् महावीर की भा अभीष्ट नहीं थी।

भगवान् महावीर और बुद्ध की जमा समान मायता हात हुए भी  
बुद्ध न निग्रय तपस्या का अन्त अथवा कड़ी आज्ञाचना क्या की इसके  
विचार करना भी जरूरी है।

(झ) अपनी गियिलता के कारण जब बुद्ध को त्याग और तपस्य  
आचार को त्याग कर अपन आचार विचारों सम्बन्ध नय मुद्रावा का  
अधिक-से अधिक शोधशास्त्र बनाने का प्रयत्न करना था तब उनके लिये  
ऐसा क्रिय विना नया सध एवम करना और उसे स्थिर रखना असम्भव था।

क्याकि उस समय निग्रन्ध परम्परा का बहुत प्राधाय था । उनके तप और त्याग से जनता आकृष्ट होती थी जिससे निग्रन्धों के प्रति उनका अधिक श्रद्धा व बौद्ध धर्मानुयायियों में जाधार की गिरिजा का देखकर वह प्रश्न कर उठती थी कि आप तप का अवहेलना क्या करते हैं ? तब बुद्ध को अपन शिष्याचार को पुष्टि के लिये अपन पाप का गणना भी पेश करनी थी और लोगों को अपन भक्तियों की गरफ खचना भी था । इस लिये वे निग्रन्धों की आध्यात्मिक तपस्या को केवल कष्टमात्र और वैहमन्य मतला कर कड़ी आलोचना करने लग ।

(अ) भगवान महावीर न जीवन्मा का चतुर्थमय स्वरूप तत्त्व माना है । अनात्मिकाल से यह जीवन्मा समवधाना में जकड़ी हुई आवागमन के चक्कर में फंसी हुई पुन पुन पूर्व जन्म त्यागरूप मृत्यु तथा नवीन जन्म प्राप्तिरूप जन्म धारण करती है । जीवन्मा नास्ति है इसमें चेतना रूप ज्ञान-ज्ञानमय गुण हैं और कर्मों काशय करके बुद्ध पवित्र अवस्था का प्राप्त कर निर्वाण अवस्था प्राप्त कर मग्न क लिये जन्ममरणरहित होकर बुद्ध स्वरूप में परमात्मा बन जाती है । आ आत्मा परमात्मा, पाप पुण्य परमेश आदि को मानकर जन दान न आत्मा है परमात्म है प्राणी अपना शुभाशुभ कर्म के अनुसार फल भागता है । इत्यादि सिद्धान्त स्वाकारनियम है । भगवान महावीर का तत्त्वज्ञान का परिचय हम प्रथम खण्ड के पाँचवें स्तम्भ में लिख आये हैं । उससे हम स्पष्ट जान होता है कि ऐसे विचार वाला व्यक्ति किसी भी प्राणी का मार्ग भ्रमण नहीं कर सकता ।

परन्तु बुद्ध ने क्षण-क्षण परिवर्तनीय मन के पारे किसी भा जीवन्मा का नहीं माना । मरन का मतत्त्व है मनका च्युत होना । बौद्ध दान अपन आप का अनात्मवानी और अनीचरवानी मानता है । उसका कहना है कि आत्मा का नित्य वस्तु नहीं है परन्तु स्पष्ट कारणों से स्वधों (भूत मन) के ही योग में उपपन्न एवं पक्का है, जो अम बाह्य भूतों की भांति क्षण क्षण उभय और विलीन हो रही है । चित्त, विज्ञान, आत्मा

[illegible]

(बैंड नाम—श्री गणेशाय नमः)

विचार के अनुसार ही अन्तर्गत होता है। यदि ऐसा मानना है कि  
अन्तर्गत नहीं है अन्तर्गत होता है। अन्तर्गत नहीं है अन्तर्गत  
परन्तु अन्तर्गत किम हा होता है ?—यदि अन्तर्गत का अन्तर्गत  
भा अन्तर्गत अन्तर्गत होता है। अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
का अन्तर्गत अन्तर्गत होता है।

[illegible]



उनका स्वप्न बनलात ।

समस्त बौद्धा में मत मानक प्रचार पाग का महा कारण प्रतीत होता है कि उनका धर्म आत्मा का स्वप्न तथा न मान कर पाँच स्कन्दों का समूह ही माना है जिसमें कि दहावमान के पश्चात् प्राणी के मत मांस का भक्ष्य मान लिया गया जाता है ।

परन्तु जन तीव्रतर भगवत्ता न प्राणियों के मृत वस्त्रों का भी जस द्वायत कल्पानुश्रुति का पुत्र मान कर सज्जमाना है । आर मांस मत प्राणी के शरीर का होता है किन्तु चान्द वं प्राणी किमा के शरीर मारा गया है अथवा अपन आप मर गये हैं जन मांस अनुरूप जीवित कल्पानुश्रुति का पुत्र मानने में उमर का भरण वस्त्र में मन्त्रान्त्र हिमा का भय लगता है । इसलिए जन मान में इसे मरवा अमर्य मान कर त्याग दिया है । क्योंकि जनमान मानता है कि जो मांस है परमात्मा है परन्तु वह प्राणी अनन्त शुभ अशुभ वस्त्र के अनुसार कर्म पायता है ।

सारांश यह है कि श्रमण भगवान् महावार के पालन और उपनैय का मतिष्ठ रत्न्य का धाना में आजाता है — आधार में पूर्ण अहिंसा और तत्त्वज्ञान में अनन्त जितक द्वारा उन्नत धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति कर भारत पर महान् उपकार किया है । जो कि भारतवर्ष के सामाजिक जगत में अत्यन्त आगमन अहिंसा मयम और तप के अनुरूप के रूप में जीवित है ।

भगवान् महावार और मन्त्रमा वद्व अहिंसाधन के एक ही पथ के लक्ष्य धर्म । मन्त्रमा वद्व अपने पथ से भटक गये और भगवान् महावार उस पथ की पार कर सफलता प्राप्त कर गये ।

२—भगवान् महावार की आज्ञा से औषध लाने वाले का आधार ।

इस औषध को लाने की आज्ञा देने वाले श्रमण भगवान् महावार हैं और जिन वान् पाँच महाव्रतधारी मन्त्र तपस्वी मुनि श्री सिंह हैं जो मन्त्रमा-वाचा-कर्मणा निम्न तया मांस भक्षण के निगोरी हैं (लेख निम्न च श्रमण का आचार स्तम्भ न ३ म) स्वयं अहिंसा के महान् उपनैय तया स्वयं उमे आचरण में लाने वाले भा हैं । यदि उपनैय किसी सिद्धान्त का

उपदेश तो करे किन्तु उसे अपने आचरण में न उतारे तो उस मिदानी का और उस मिदानी के प्रचारक का अनगमान पर कोई प्रभाव नहा पड़ना [मौन्य बद्ध न अहिंसा का प्रचार ता किमा किन्तु स्वयं मांसाहार का त्याग नहा किया कल्प आन भा बोद्ध धर्मावलम्बिया मे मांसाहार प्राय मवन्न प्रचलित है] । हम लिख आते हैं कि भगवान महावार ने अहिंसा का उपदेश दिया और माण्डूजीवन में भा आन प्राणकर अहिंसा का पूर्णकरण प्राप्त किया । कल्प आन भा अनन्यावलम्बिया में मरम्भ मान मन्त्रि आनि अभय पदायों का सेवन पूर्ण रूप से त्याग्य है ।

उन नीयकृग तथा निग्रय धमना के आचारों का समग्र लेन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि एही आत्मा अहिंसा व उपचार तथा प्रतिपादक मित्र नामक निग्रय धमन मामानर न ता एही सक्ते थे और न ही धमन भगवान मन्वादा उन आन की आत्मा दी द मवन थे ।

३-औपय बनान तथा देने वाली देवती धाविका का व्यवहारिक जीवन

मुनि मिह उम औपय का किसी कमाई अथवा यत्नस्पत न नहीं लाये थे और न ही किमा मांसाहारी व वहां से गये थे । वह तो उम एक उत्कृष्ट जन धाविका (श्रमणोगमिका) व घर से गये थे, जिसका नाम था देवता जो कि एक घनाश्रय मठ की भार्या थी ।

इम देवती का वर्णन प्राचीन जनायम गात्रो में इम प्रकार पाया जाता है ।

१-“समणस्स भगवतो महावीरस्स सुलसा देवइ पामुक्खणा समणो वासिपाण तिनि सयसहस्सीजो अटठारस्स सहस्सा उवकोत्तिपा सम षोवात्तिपाण सयदा हुत्वा ” ( श्री कल्प-सूत्र बीर चरित्र )

२- तएण सोए देवतीण गाहावइणीण तेण वल्लमुद्धण जाव-वाणण सोहे अणगारे पडिलाभिउ समण देवाउए निबद्धे, जहा विजयस्स जाव जम्म-जीविपफले देवती गाहावइणीण ।’

(भगवतीसूत्र पत्रक १५)

३-‘समणस्स ण भगवतो महावीरस्स तिस्यमि भवहि ओवेहि तिरय-

रणाम मोक्षे ण कस्मै निवृत्तिते (१) सेणितेण, (२) सुपासणे, (३) उदातिगा (४) पाट्टिणेण लभगारेण (५) वडाउणा, (६) सल्लण, (७) सत्तणेण, (८) सुल्लसाण, (९) साविकाते रेवतीते” ।

(ठाणींग सूत्र सू० ६९१)

श्रीअभयदेवमूर्तिना टीका —

“तथा रेवती भगवत् जीवधदात्री

रेवती च बहुमान

कृतापमात्मान मध्यमाना यथापाक्षित तत्पात्रे प्रक्षिप्तवती । तेनाप्यानाय तव भगवतो हस्ते विनष्ट । भगवतापि धीतरागतयवावरकोष्ठे निक्षिप्त, ततस्तत्क्षणमेव क्षीणो रोगो जात (ठाणींग सूत्र पाठ की टीका)

अथान—१—धम्मण भगवान् महावीर की मुल्ला रवता प्रमुल चीन लाय अगारह हवार आबिकाओं की उत्कृष्ट सख्या थी ।

२—उन्म रा गृहपति की भार्या रेवता आबिका न सिंह अनगार का कुछ द्रव्य दान न्न से न्वायु का वय दिया और जन्म मरण रूप ससार का भी अंत दिया (माक्ष प्राप्त करना)

३—धम्मण भगवान् महावीर ने जीवनकाल में उसके तीर्थ में नी प्राणियों ने तीर्थकर नामगोत्र का वच दिया । जिनके नाम हैं—(१) धणिक (२) सुपात्र (३) उदाया (४) पाट्टिल अनगार (५) वडायु (६) बाल (७) तव (८) सुल्ला तथा (९) आबिका रेवता ।

इन में १ आबिका रेवती जो कि (निगड नायबुज) धम्मण भगवान् महावीर का जीवध दान न्न वाला था । उस जीवध दान दान के कारण उसने तीर्थकर नामगोत्र का उपाजन किया—याना जिन वच के प्रभाव से अगले जन्म में वह तीर्थकर वत् प्राप्त कर भी त प्राप्त करगी । एसा रेवता आबिका न अपन आप का कृतार्थ मानन हुए सिंह मुनि (अनगार) के द्वारा मागा इई जीवध का मुनि ने पात्र में डाल दिया । उस मुनि ने भी (वह जीवध) ग कर भगवान् के दूपा में रख न । धम्मण भगवान् महावीर ने भी प्रीतरावना पूजा उन लाया और उन का रोम गात हुआ ।

हम तीर्थकर नामकम उपासन करने के लिये मान्द अथवा वाग भावनाओं का उद्देश्य कर आये हैं । आधिका रवती का जीवनधर्म का अवलोकन करने से इन भावनाओं में से निम्न लिखित भावनाओं का सम्पादन करने से हम समय उम में या तथा स्पष्ट प्रभाव होता है—

१—ज्ञान विगुडि २—ग्रहन भक्ति ३—गौरी मया वारु प्रता का मानन ४—निनयमम्पन्नता ५—ग्यान (ज्ञान देना) ६—वपावरण ७—सारगुमाधिररण इत्यादि ।

देवता आधिका के इस व्यवहन विवरण से हमें ज्ञान भी स्पष्ट हो जाती है कि—(१) वह एक अठ धर्मगोपामिका (१० प्रत धार्मिकी आधिका) था । (२) निमल नायपुन (धर्मग भगवान् मन्दाकार) के लिये मिह अतगार (निग्रय) का गुड द्रव्य से लपार का कया औपध का दात हम के प्रभाव से तीर्थकर नामकम का उपासन किया । (३) मधु उपरास्ति दव ग्राकम गया । (४) आधिका उन प्रमुख आधिकाओं में से एक था जो धर्मग भगवान् मन्दाकार का जीवन गान्ध अन्तरह हनार उरहृष्ट आधिकाए था । इस पर से तथा स्तम्भ न० २ में मधु आधिका-आधिकाओं के आचार का जो विवरण आया है उस पर से हमें स्पष्ट ज्ञान मिलता है कि एक आचार वाग देवती आधिका मध्य मीन मन्दिरे इत्यादि सब प्रकार का अमध्य धर्मगुओं की स्वयं त्यागिता था कथा कि उस अहन्-वचन पर दुष्ट शब्दों की और उमन वारु प्रता को प्रत्यक्ष करने समय आधिका के मातृक भागापभाग परिमाण ज्ञान में इन अमध्य धर्मगुओं का त्याग कर लिया था । वह यत्न भी जाननी थी कि न तो अन्त प्रत्यक्ष से आधिका आधिका का मासाहार बनाने की जाना है न ही नाथकर स्व मासाहार ग्रहण करते हैं तथा निग्रय धर्मग का भी मासाहार नैवेद्य करने का मतार्थ है । कहने का आशय यह है कि मान्द धर्मगुओं की त्यागिता तथा वारु प्रत धार्मिकी हान के नान नाम स्वग्न कर अथवा उपा कर न ला सकता थी न पदासकती थी और न ही स्वयं या सकता था । न ही निग्रय मुनि तथा तीर्थकर के लिये मासाहार नैवेद्यों का वह यत्न भी मन्दिरे भाति जानना

था कि अहत प्रवचन में मांसाहार को श्रमण भगवान् महावीर ने नरक का कारण बतलाया है। मांस खाने वाले स्नान वाले तथा मनाने वाले सब को घातक (बमार्ई) का काटि में मिला है। तथा यह भी घात निःसन्देह है कि जो राम निगठ नायपुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) को इस समय था, जिस रोग के समन के लिये यह जीवधान दी गयी थी उस रोग में मांसाहार अत्यन्त हानिकारक है।<sup>१</sup> इसे विचारो स सम्पन्न तथा आशुविना क श्रमण शारिद्र (घना) में अकञ्चन रखी आशुविना मांसाहार बनाए यह स्वयं गाय अथवा पट्टिकार का घना कर खिलाये, तीक्ष्ण के लिये दे और मुनि का दान में दे यह कदापि समभव नहीं हो सकता। तथा मांसाहार के दान में तीक्ष्ण नामकम का उपोजन कर एक मृत्यु उपदान दक गति प्राप्त करे यह सब जानें जन सिद्धांत के तो विरुद्ध हैं ही। साथ ही इस राम के लिये या मांस हानिकारक दान से इस ओषध दान को मांसाहार के दान की कल्पना करना नितांत अनुचित है।

श्रमण भगवान् महावीर जैसे महान् समसी और महान् सपत्नी, जिन्होंने न तप और समय की साधक अवस्था में घोरातिघोर उपसर्गों तथा परीपहा का बीतराम भात्र से सन्न किया नवकाटिक अहिंसा का अपनी आत्मा में एकाकार करने जिसके मांसन एक महान् धादन उपस्थित किया एव कदगासागर महान् अस्मिन् निगठ नायपुत्र (भगवान् बधमान महावीर) ने ही मांसाहार स्वीकार कर मरने के ओर न ही सिंह अनगार को राम के लिये आज्ञा द सकने थे।

## मासाहारी प्रदेशों में रहने वाले जनधर्मावलम्बियों का जीवनसंस्कार तथा उनके प्रभाव वाले प्रदेशों में अन्य धर्मावलम्बियों पर उनका प्रभाव

१—भगवान् महाबल की अल्प महिला का हा यह प्रभाव है कि  
मूलरूप में अथवा वर्तमान रूप में मासाहारी प्रदेशों में भी निवास  
करने वाले जनधर्मावलम्बियों आज भी बहुत निरामिषाण्य हैं ।

२—जो जानिया हजारों-सहस्रों वर्ष पहले जन धर्म को मानता थीं  
और बाद में निम्न प्रयोगों के विचार उन प्रदेशों में न होने से सबंध कर्षों  
से जन धर्म का रूप यह अन्य संप्रदायों में मिल चुकी है परन्तु उनके  
ब्रह्मा का अपन पञ्चांग व जन होने का ज्ञान है व भरावर्ति जातियाँ  
बगल विचार जन आज के मासाहारी प्रदेशों में रहने हुए भी बहुत  
निरामिषाण्य हैं । २ विभाजन का भा त्यागी हैं मध्य भूमि मध्य धर्म  
सात कुम्भमना का भा याया हैं भगवान् पादरत्न का अपना कुलदेवता  
मान कर उत्तरा पुत्रा उपासना भा करती हैं भागानुमारी व गुणा के पात्र  
में भा तपस्व रत्ना है इमन्त्रि इहें आज भा इम बात का मय है कि व  
आज तक रिया भा काज्जारी जवरथ मन्त्रित नहाहुई ।

३—तथा जनी जनी पर जन धर्मावलम्बियों का आज भी प्रभाव है  
वही रहने वाला व श्व गव धर्म जातियाँ एया है जो जन धर्मानुयायी  
न हान हुए भी बहुत निरामिषाण्य हैं ।

४—आज में हजारों सत्तु वर्ष पन्ने वर्ष मासाहारी जातियों को

श्रीमाल पोद्दाल आदि वर्गों की स्थापना की जो सब स लेकर आज तक चट्टर निरामिषाहारा हैं ।

५—मारवाड मेवाड़ गुजरात आदि प्रदेशों में जहाँ पर अनवर गीताय निग्रहों ने जायम का अनवर छतानिया तक प्रचार किया उनके उपदेशों के प्रभाव में इन पर प्रदेशों का अधिकतर जनता निरामिषाहारी है ।

इस सति मवाच स्वीकार करना पड़ता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी (निगूठ मायपुत्र) की अहिंसा में यदि मत्स्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने का आज्ञा होनी तो जनधर्मावलम्बों तथा उन के प्रभाव वाले क्षेत्र में भी आज मत्स्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करने की क्षमिलता आय बिना कदापि न रहनी ।





थी। उह माकूम न होने से जना पर ऐसा आशय न किया है।

परन्तु प्रथम तो यह बात ही अगम्य है कि जना के इस विभी भी अथ धर्मावस्था न न देख-ग- है। बौद्ध सिद्धांतवा अथ मप्रणाय के समग्रधर्म से स्पष्ट पता चलता है कि जनक निग्रय धर्मको न जनधर्म का त्याग कर अथ मपदाया का जल्दीशर किया। एही अवस्था में ऐसे लोगों ने जन धर्म छाड़ने में पहले जन शास्त्रा का पठन पाठन ध्वषण आदि अपश्य किया हो हागा और निग्रयधर्म का पालन भी किया ही होगा। अतः वे लोग जन आधार विश्वास में पूरणरूपेण परिवर्तित थे। जनधर्म का त्याग करने के बाद जनधर्म के प्रति उनका अनिष्ट रहना भी निश्चित है। ऐसा अवस्था में यदि जन साधारण निग्रयधर्मण एवं धर्मणापामर्गों के मोक्ष मास्याभिगमण करने का वचन जनागमा में हाता अथवा वे इसी अभ्यस भरण करने हागे ता त्तारे तित अथ धर्मों का स्वीकार करने या न जनधर्म के विरोध में अवश्य मासाधार का आशय करते।

दूसरी बात यह है कि इन तथ्यावस्था का यह बात मान भी ला जाय कि जनतर विद्वाना के हाथ में जन शास्त्र में आन में वे उन शास्त्रा से पूरणरूपेण अवभिन्न रह इमलिए व त्तान जनधर्मिया के मासाहार कर का आकाचना न कर पाय। इन बात के उत्तर में हम इतना ही कहना है कि यह बात तो निमद- है कि जनधर्माविगमिषा के आवरण से भी सब श्रेश्यामी परिवर्तित थे। यदि जनधर्माविगमिषा में किया भी समय किया भी रूप में मोक्ष मास्याधार का प्रवृत्त हाता ता वे जना पर इमका अवयव आ रूप करते।

४—इसी प्रकार प्राचाय अथवा नवीन जा भी जनधर्म में अथ धर्म-मप्रणाय हैं उन सब न जन धर्म की रई वाना की आलाचना का हागी आक्षेप भा किया होग निन्तु किसी भा रथ सप्रणाय के दिगानो न जना पर मासाहार का आक्षेप नभी नहीं किया।

५—यदि भगवान् महावीर अथवा उनका निग्रय धर्मण युक्त अनुविध

सब मामानस ज्ञान (चाहे यन्त्र और अथवा यन्त्र से अथवा उद्योग यन्त्र  
है) या यन्त्र ज्ञान निश्चित है कि अथवा मोक्ष जनों पर मामानस का  
आपत्ति रित विना कर्माणि न रहने के लिये हाइनेकी अवधारणा करने।  
यहां कि हम देखते हैं कि एक पक्ष बाबा अथवा पक्ष के प्रचार के लिये  
दूधरपक्ष के मामानस ज्ञान को ज्ञान पर उतरे बहुत बड़े रूप में बड़ा बड़ा  
कर अथवा ग्राह्य और निर्धारण का भाव उस का शारीरिक प्रकाश कर  
लगाया के लिये। विद्वत् रूप में ज्ञान के लिये कोई बमर बाकी उपायी  
रहता जिस में उद्योग धर्म के प्रति पक्षा पक्ष रहने पक्षता का अवधान  
आज जाहिर किया जा रहा। एकाग्र मन करने प्रायः प्रत्येक पक्ष के ज्ञान  
प्राप्ति में गारा जाता है। तथा अनेक बार ऐसा भी कहा जाता है कि  
आचार गम्यता भी आलोचना करके उस पक्ष के विचार में प्रचार किया  
जाता है।

एसा ज्ञान हुए भावनात्मक विभी भी पक्ष-प्रकाश के लिये जनों पर  
मामानस का आचार उठा लगाया। अब मैं यह स्पष्ट है कि ज्ञान में  
मामानस का पुनः रूप में ज्ञान निश्चय ज्ञान आ रहा है। उत के द्वारा पक्ष  
आचार में गम्यता पूरी तरह में परिचित है। ज्ञानी अवस्था में उद्योग समर्थ  
यदि कोई मामानस पक्ष या धर्मात्मक कामाक्षी ज्ञान स्थिति  
जाना ज्ञान के लिये हाइने करने भावना ज्ञान में उद्योग प्रकाश  
अनन्य का बड़ा उद्योग मिथ्या प्रकाश समर्थक एक प्रति अवस्था में  
जाता स्वाभाविक है। इस में बड़ी कठिनाई होता है कि ज्ञान नीयकर,  
निश्चय धर्मणां अनुविषय अनन्य कर्माणि मामानस कहा करके है।

## तथागत गौतम बुद्ध की निग्रन्थ अवस्था की तपश्चर्या में मांसाहार को ग्रहण न करने का ध्यान ।

हम इस निबन्ध के प्रथम अंश के नवमे स्तम्भ में मिल आये हैं कि गौतम बुद्ध ने कुछ बातें तब निग्रन्थ अवस्था में रह कर निग्रन्थ परम्परा में तपश्चर्या की कियी थी । उसमें बुद्ध ने स्वयं कहा है कि मैं—१—मत्स्य मांस-मूरा आदि वस्तुएँ नहीं लेता था । २—बैठ हुए स्थान पर बिये हुए अन्न को और ३—अपने लिये तयार किए हुए अन्न को ग्रहण नहीं करता था, इत्यादि । (मज्झिम निबान महासाहान् मुत्त)

इससे यह कथित हुआ है कि १—यदि बुद्ध के समय निग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध निग्रन्थचर्या का पालन करते समय के व्रजन में कदापि यह न करते कि मैं मत्स्य-मांस-मूरा आदि का भजन नही करता था । २—कदाचि बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद तो बुद्ध तथा उनके भिक्षु मांसाहार करते थे तब जन आदि अन्य पक्षों वाले जो इन अभक्ष्य वस्तुओं का भजन नहीं करते थे वे बौद्धों पर इस निविलम्बा के दृष्टि आगप भी किया करते थे । यदि निग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का प्रचार हुआ तो गौतम बुद्ध अपने व्रतों के लिये जैनो को उत्तर में यह अवश्य कहने पाय जाते कि तुम भी तो मांसाहार करते हो ? सिन्धु एसा आगप बौद्ध पक्षों से नहीं भी उपलब्ध नही होता । ३—यदि निग्रन्थ परम्परा में मांसाहार का ग्रन्थ निग्रन्थ न होता तो सम्भवतः गौतम बुद्ध निग्रन्थ धर्म को त्याग करने की आज्ञाप्रवृत्ति प्रणीत न करते । उन्होंने निग्रन्थचर्या की इस कठोरता का पालन करने में अपने आप को असमर्थ पाया इसलिये उन्हें इस मार्ग का छोड़ बिना अन्य कोई उपाय

नहीं या वे नियमों से अलग हो कर ही मत्स्य-मांस जमी अन्न-य वस्तुओं का भक्षण कर सकते थे ।

इस से यह स्पष्ट है कि नियमचर्या में माताहार की विधि मात्र भी सु जादग नहीं है ।

बौद्ध वापालिक वैश्वामनुयायी तथा अन्य अन्य सम्प्रदाय उस समय मांस परम्परा में भक्षण करने वाले थे ऐसी अवस्था में यदि कोई ऐसा तक करता है कि जब अन्य धर्मावलम्बी मांस मत्स्यादि का आहार करते थे तो जन इस से कम बच सकते थे ? यह दलील भी इन की युक्तिगणत नहीं है क्योंकि उस समय जनक अन्यमत्स्यवलम्बी तपस्वी भी जनों के समान ही मांसाहार नहीं करते थे और इस का पूर्ण रूप से नियम करते थे ऐसा हम बौद्धग्रन्थ भुत्तनिपात के श्लोकों आगम्य सुत में एक तपस्वी का वाक्य बुद्ध के पास हुए महात्मा से जान सकते हैं । वैसे ही जन भी इन अमर्य-भक्षणों से भग्न अलिप्त रहे हैं । तथा मांस-मत्स्य भक्षण के सबन्धी प्रचार के इन युग में ऐसे गये वातावरण में भी जन समाज इस से बचा बची हुई है यह हमारे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

## श्रमण भगवान् महावीर का रोग तथा उसके लिये उपयुक्त औषध ।

निगूढ नायपुत्त (श्रमण भगवान् महावीर) का चार प्रकार के रोग थे—(१) रक्त पित्त (२) नित्त रजर, (३) दाह तथा (४) रक्तातिसार रोग थे । और ये रोग उन का बचन अवस्था में दृष्ट थे । जो कि उन के विरोधी गणालय क द्वारा छाटी हुई तेजालय का स्पर्श में ला गया था । तेजालय में हतनी प्रवृत्त लय दक्षिण जाता है कि उसके स्पर्श में जा आ जाता है वह मरम हो जाता है । इसी लिये भगवान् महावीर का इससे स्पर्श मात्र में प्रभाव से हो एता गहव रोग हो गया था । इन रोग के उपचार के लिये कौन सी औषध उपयुक्त हो सकेगी है इस का निणय करने में पहले हम पाठका की जानकारी के लिये इस रोग के कारण लक्षण तथा वृद्धि के कारण बतला देना चाहते हैं ताकि हम जान सकें कि निदान में चिकित्सा गुरु की दृष्टि में प्राण्यय मास भक्षण करना लाभकारी हो सक्ता है अथवा वनस्पति से तमार की हुई औषध ?

१—रक्त पित्त रोग का लक्षण भेद तथा कारण —

रक्तपित्त त्रिधा प्रोक्षतमूष्वग वक्षसगतम् ।

अधोग मास्तोज्जथ तवद्वयन द्विभागमम् ॥ १९ ॥

(सारगधर संहिता प्र० सू० अ० ७)

अयान—रक्तपित्त तीन प्रकार का होता है—(१) ऊर्ध्वगामी (२) अधगामी (३) उभयगामी (ऊपर व नीचे गता मांसों में रक्त जाय)

ऊर्ध्वगामी—जिस रोग में मुख, नाक आदि ऊर्ध्व भाग से रक्त गिरता है, वह वफ के सम्बन्ध से होता है ।

अपानाश्वसी—जिन रक्त में मूत्र, मूत्र आदि अपशिष्टों में रक्त मिश्रण है, वह रक्त शरीर के माध्यम में हटाया है।

ऊपर और नीचे दोनों मार्गों में स्थित इन बाग रक्षक-निगम विभाग-  
सामीप्यता है और वह बाग और बाग इन दोनों स्तरों में होता है।

इस प्रकार यह राज ठीक प्रकार का हुआ है ।

### राष्ट्र होने का कारण—

अग्नि य अग्नि गन्ध मे घृत्त म अन्नं दध्नुः म अग्नि यन्त्रिम  
कन्द म यन्त्रि माय यन्त्रि म यन्त्रि अन्नं दध्नुः म अग्नि यन्त्रिम  
जाय मे अग्नि उन्नय क अन्नं दध्नुः म अग्नि यन्त्रिम  
अन्नं दध्नुः म अग्नि यन्त्रिम अन्नं दध्नुः म अग्नि यन्त्रिम

इस रंग व आयत—एक लाख बार रंगने की माफ़क करने  
पाए इत्यादि । (भावभिरुद)

२—पित्त कृशक लक्षण —आर घर्गिर म ६७ उरर णा वग लाउ  
तावा मण्ठा क्षय निग मण्ठा वडया अनिसार हयाणि ।

(आयनियन पु. ५११)

२-बाहरी रोम हैं अल्प — बाहरी गुच्छ तथा गच्छ ह्याप्त द्रव्याणि ।  
 महुराग अग्नि द्वारा जलन प्रवृत्ति गच्छमन्त्र म मुख व मात म विष्णु म  
 गरम द्वायी व मन्त्र के अथवा विष्णु व प्रवृत्ति वगैरह म अन्तः  
 (गरीर व अन्तः का बाहरी) तथा अन्तः (बाहरी गरीर जलना है)  
 अथवा अन्तः का द्वायी ह्याप्त है । म व मात व है—(१) अन्तः  
 बाहरी (२) दक्ष बाहरी (३) विष्णु बाहरी (४) लक्ष्मी बाहरी (५) अन्तः  
 गुच्छ बाहरी (६) अन्तः बाहरी (७) मन्त्र बाहरी ।

इमं रोगं भ्रूयस्व—याम्नेषुना श्वारे तथा दिने वर पण्य स्याता  
 यमो ग्ना यम पण्य स्याता न्यादि । (आयुर्वेद ५०५१०) ।

४-रत्नानिमित्त-—युक्त व सापेक्षता के अभाव में इस भगवत् भाव है ।

अथ—यत्पूज्य अवराज क्षीराक्ष्णं स्निग्धमात्रेण तस्या मारा  
पणाय इत्यादि । (मात्रभिरक्ष्णं पु०४\*१\*२)

यहाँ पर हमन भगवान महावीर के रोग उससे होने के कारण, लक्षण तथा अण्ण आदि का विस्तृत स्वल्प बयन कर दिया है, जिस का संक्षेप इस प्रकार है ।

गोमाल्प के तत्राश्रया छादन पर उग के तीव्र ताप के कारण भगवान् को अयोगामी रक्त गति तथा रक्तातिमार हा गान के कारण खून की टट्टियाँ रक्त बसायी । पित्त रज्ज तथा दाहिराग भा य जिनके कारण तीव्र ज्वर तथा गरोर में बहुत अधिक ज्वर भी था । ये रोग गरम स्निग्ध भारी पच्य तथा खट्टु चारे बड़के पच्य दमबन में बढते हैं ।

हम यहां पर इस ज्ञान का विचार करें कि इस रोग में मासाहार लाभकारी है अथवा घातक ?

मांस के गुण और दोष—

‘स्निग्ध उष्ण मृदु रक्त पित्तजनक वातहृत् क ।

सर्वमांसं वातध्वनिबध्य ॥”

अर्थात्—मांस स्निग्ध गरम भारी रक्त पित्त का पैदा करने वाला तथा वात को दूर करने वाला है । सब प्रकार के मांस वातहृत् तथा भारी है ।

यदि भगवान् महावीर के रोग का विचार करें तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि गुर्मे का मांस इस रोग का निवारण नहीं कर सकता क्योंकि मांस इस रोग का उत्पन्न तथा वृद्धि करने वाला है यह आयुर्वेद आसत्र का स्पष्ट मत है ।

अतः इस में यही फलित होता है कि भगवान् महावीर पर मासाहार का दोष तयाना नितान्त अनुचित है ।

इस लिए रेवती आश्विका द्वारा इस औषध ज्ञान में जो द्रव्य लिया गया था वह कुछकुछ मांस (गुर्मे का मांस) कच्चा नहा था किन्तु कोई वनस्पति विशेष थी । यह औषध कीतरी थी यह का निश्चय हम आगे करण ।

## विषादास्पद प्रकरण वाले पाठ में आने वाले शब्दों के वास्तविक अर्थ

### ( १ ) मांस शब्द की उत्पत्ति का इतिहास

प्रारम्भ में मांस शब्द किसी भी पशु के अर्थ में आतरी सार भाग के अर्थ में प्रयुक्त होता था। धीरे धीरे यह शब्द मनुष्यादि प्राणधारियों के तृतीय धातु के अर्थ में तथा वनस्पति जनित फल मेवा आदि के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

वर्तमान धर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में पशुपशु का तथा गृह्यसूत्र के मांसदान का वर्णन नहीं है। शिव निषण्ण में मांस शब्द अथवा मांस का कोई अन्य नाम नहीं मिलता। परन्तु उस समय मांस का तात्पर्य। प्राचीन वेद तथा प्राचीन वर्तमान कोश में इसका उल्लेख न होने का कारण यही है कि तत्कालीन ऋषि लोग प्राणी के अंग रूप मांस का विनाश काय में इस्तेमाल नहीं करते थे। इस लिए उनकी बनाई हुई वर्तमान ऋक्षात्रा में मांस शब्द नहीं आता था और न ही उसे वर्तमान निषण्ण में लिखने की आवश्यकता थी।

बाद में ऋग्वेद में कुछ सूक्त प्रणिप्त हुए उन सूक्तों में मांस और ऋषिपद का शब्द पाया जाता है। ऋग्वेदसंहिता में मांस शब्द के उपरान्त पित्रि और ऋषिपू शब्द मिलते हैं। यद्यपि वेद में आम शब्द कच्चे मांस का कहते हैं। परन्तु आचार्य यास्क के मत में वेद काल में आम शब्द सामान्य मांस में प्रयुक्त होता होगा। जन और बौद्ध संप्रदायों के प्राचीन सूत्रों में आम शब्द आमस्य शब्दों के आशय इस शब्द का मांस के अर्थ में ही प्रयोग किया गया है। इस से प्रमाण होता है कि आम से कोई हजार



वप और इम ॥ पहिले मांस विनिग आम और कविष म चार गण मांस के अर्थ म प्रयुक्त होन थे ।

## (२) मांस के नामा में वृद्धि

इमा पूव छठी शताब्दी तन मांस के चार नाम हा प्रचलित थे । इन में स आम और कविष बदिब नाम हान क कारण स्तोत्रम्वहार म ॥ लप्त हो गय, परन्तु मांस क कुछ नय नाम मा प्रचलित हा गय जिनका प्रमित इतिहास इस प्रकार है । अमर काण ' जा वि' विद्यमान सब शब्द काणा स प्रावान है—पाचरी शताब्दी का कृति है—उद्यम मांस के छ नाम मिले हैं । इसवे छठवा मास मोक्षप बाद अथवा ग्यारहरी चारवीं शताब्दी म हान यागे वापनी नया अभिधानवितामणि काशों म प्रमाण गारह तथा तेरह नाम संग्रह म हैं—

‘ मांसपलाज जागले । रक्ततास तेजोमधैकम्यकादप तरतामिष ॥ ६२२ । मन्त्रकृत विनिग कोन यसम ॥

(अभिधानवितामणि)

उक्त मोर्गाणि नामा क अर्थों का विचार करने म स्पष्ट हुआ है कि मांस निम्नका अथ प्राणि अंग होना है यद् मनुष्य के ज्ञान का पन्था नहीं था ।

प्रत्यक्ष नाम गण के लिय एव ही अर्थ म प्रयुक्त नहीं जाता । कई ऐसे नाम हैं जा प्रारम्भ में एकाग्रक हागे हुए भी हजारो वर्षों के बाद अन वाधक बन चुके हैं जस—अण मधु हरि आदि नाम । कई अत्रकायक नाम हजारो वर्षों के बाद एकाग्रक बन जात हैं जस मृग फल मांस आदि शब्दों के अर्थ गठित हो जान के कारण उन अर्थों का त्याग हो जाता है । काण्वार अपन समय म जा गान जिम अर्थ का वाचन हाता है मा उगी अर्थ का प्रतिपादन बनाते हैं । लप्ताशों तथा मविध्यन्त अर्थों का वापना म के रुभा नहीं पडत । ज्यों ज्यों जिम पन्था के नाम बढ़ने जात हैं त्या त्यों जाग के कोणकार अपन कोण म संघट करने जाते हैं ।

(३) जनसंख्या में भी वृद्धि

जिन प्रकार मनुष्याणि प्राणधारिणों के प्रकार म (१) रम (२) क्षिर, ( ) मांस (४) मेष्य (५) अग्नि (६) मग्ना और (७) शीघ्र—यथा धातु है उन्हीं प्रकार जिन प्राचीन वाद में मन्यमानिया के भी मनुष्याणि मनुष्य धातु मान जाय थे ।

१-यन्त्र-मार्ग प्रमाणपरिभाषा का अंगगणनायक सम अथवा एकता कल्पना है, उसी प्रकार यन्त्रपरिभाषा का अंगगणनायक भी सम अथवा एकता कल्पना है।

२-मन्यन्ति प्राणधारिणः च आत्मा मे नशरं हृत्मा मयि सग वृ-  
त्ताना ३ वसु हा वन्यन्त्या म मयि वृत्ता म भाग म वृत्ताना है । ३

२-राजधानियों के गरीब मजदूरों तथा कृषि-कर्मियों के यम ही  
यम-निशे मजदूरों को बर्बरता से दबाने का दृष्टि कर्मणा है।<sup>३</sup>

४-प्रोप्रागिया व इति मे वनन वाग गान वनाथ मात वग्यना हे  
वमे हा वननानिया न मिन्न वाग भार भात (गदा) मात वग्यना हे । ५

१--गोमायकाग लहर दिवा स्वयं विदुषु न गच्छोप वनता अथ  
गिरावोदुम्बराणां सर्वदाजिह्वभागां धर्मकपायकलनाभिर्विस्थिति  
××/ (गोपायन गृह्यसूत्र पृ० २५५)

अथान्तात्मा पञ्चांग मन्त्रि विषय अद्वय विष्णुन यथाप  
पतम आद्य निराश उद्भव इति वशा तथा जय मुद्रा दानिक वशा के चम  
(लिङ्ग) क बुद्ध न मित्र ज्ञान भव वला न (विष्णुमुक्ति वा)  
अभिज्ञान करें।

२-सामासदा लघान्प्रति रमो वनादि बाह्यात् (बृहदारण्यकोपनि०)  
अर्थात्-जिन प्रकार का घर पर घर बन स म रम निवसता है वग ही  
युग युग क परादु म रम निवसता है ।

३-नञ् एवात्य वृत्तः प्रथमः इत्यत्र उत्पत्तिः (सूत्रात्परिचयः)।  
यथा-इत्यादि इति शब्दः है वा त्वया (छिन्ने) न भोजनं न  
शरणा है ।

४-यज्ञ रमाताप्यय भारिषयम (चरक संहिता)

५-प्राणधारियों के मात से मन्त्र (मन्त्रे विनाट) धातु धाता है वसे वृत्ता के अग प्रत्यया से भेदस सन्त्र मात्र निवृत्ता है उम प्रत्ययिता मन्त्रे धातु गहते हैं ।\*

६-प्राणनासियों व शरीर में रहने वाले बठार भाग का अस्थि कहते हैं। इसे वनस्पतिधा व गलार में रहने वाले (गुठरी बीजों) को अस्थि कहते हैं।<sup>१६</sup>

७-प्राणधारिया का अस्थिया म हान वा स्निग्ध पन्थ को मज्जा धातु कहते हैं वसे पन्थ की गुर्झिना तथा बाजों म म निरन्त घाले स्निग्ध पन्थ का वन की मज्जा पन्थ ॥ १०

८-प्राणधारिया व अतिम धातु को रेतम अथवा खीय आदि नाम प्राप्त हैं वसे वनस्पतिया म आ अमर अमर प्रसार की क्षमता रखती हैं। उनका शीतवीर्य उष्णकाय आदि नामों वान है।<sup>८</sup>

९-प्राणधारियों के शरीर पर के राम राग और तिर पर के राम-बाल बहलाते हैं यही हा वाष्पिया के समार पर भी रोम तथा बाल

अथ—सूत्र का मास (गूना) और मारियन् का मास (गिरी) ।

५-माता यस्य शकराणि कीनाट आवृतत स्थितम् (बृहदार०)

अध-भातर के सार भाग के टुकड़ इसका मात और स्निग्ध जमा हुआ सब इस या किताब (मन्त्राङ्ग) है।

६-अस्तिमीजानां भट्टशलेष क्षातिना मत्तवाहो गोमस्ति-गह्वि-  
काले रोह्य च । (कोटिस्थ यथशास्त्र पृ० ११८)

अप-अस्थि (गुठली) और बीज वाले वृद्धों के बीजों की गावर का अप बरके घाना चाहिये ।

७-८-वातादिमज्जा मधरा, वय्या तिकताऽनिलापहा ।

हृत्तान्त्रिका कफकृन्नेष्टा रक्तपित्तविकारिणाम् ॥१२५॥

(भावप्रधान नि०)

जय-श्याम की झुंझा (गिरी) भीठी पुष्टि करके वायु को नाश करने वाला, रक्तपित्त के रागियों को हानिकारक स्निग्ध, उत्प्रेषीय,

मान जाते हैं । ४

१०—अथ प्रणय रिया म मान हाता है वम फल म भी नाते मानी गयी है । जिनके द्वारा फल न छ हुए वाज के चिरागो गुरु मेम् का रम पदुचना है उन रंगा का बछ राम अत्र बन्ने हैं । १०

मुखन सहिता म न्नेसे भा सष्ट उत्तेम मिलता है जो नीच दिया जाता है ।

छूतफन परिवचन केगर मासा इस्थि मज्जन धुयक-मयक हयते कालप्रवर्धन । तावय तरुणे मोयनम्यन्त, सूक्ष्मत्वान् ।  
तेषां सूक्ष्माणां कणरादीनां काल प्रव्यवतता वराति ।

(सुधन सहिता शा० भा० ३ श्लो० ३२)

अथ—पवे आम व फर्को म केगर मास जन्मि मजा प्रत्य

(गरक) ओर वफ करन वाली हलो है ।

९—स वा एष पणरालम्बते यम पुरोडागस्तस्य विगाहनि तानि तानि ये सुवा सा त्यक् य फलकरणास्तदमक यम पठ विजतता, यत सार तमांस यतिकश्चिन्व कसार तस्थि, सर्वेषा वा एष पणुनां मेधन यजते तत्मादातु पुरोडागसत्र लोच्यमिति (द्वितीय पञ्चिका अ० प० ११५)

अथ—य पणु वा ही आग्निन किया जाता है जो पुरोडाग तयार करत है (उस म) यव बाहि पर जा विगाह (गुन) होत है वे इन के राम हैं इन पर जा सुय है व इनका यम है जा फलीकरण है वह इनका रमिर है जो पृष्ठ है वह इसरी रात है इसका जो कुछ सार भाग है वह मान है इनका जो वसार (ऊपर का कठोर भाग) है वह अस्थि है जो इस पुरोडाग से मन करता है वह सब पणुओं म मन करता है । इस वाग्ने पुरोडाग का लाजनिकारी सब कहते हैं ।

१०—समुत्सव्य ततो वाजान, अत्राणि तु समसमेव ।

तानि प्रक्षाल्य प्रक्षाल्य तोयन प्रवण्णी निक्षिपत् पुन ॥

(शाकस्पय पृ० २५)

अथ—उसम म बीज तथा आते निकालदे, फिर उमेधा दाते और वाग्ने में प्रवणी मे रत ।

रूप सन्निवृत्त देते हैं। परन्तु कच्चे आम में ये अणु गूदम अवस्था में होने के कारण अलग अलग सन्निवृत्त नहीं देने। उन गूदम के कारण आदि को समझ सकने रूप रत्ना है।

४—मांसादि शब्दों के अणुओं को गणकारों के अणु

मांस (संस्कृत) = 1—Flesh स्नायु का समूह।

2—The flesh of fish मछली का मांस।

3—The fleshy part of a fruit फल का

गूदा गिरी अथवा नरम भाग।

(आष्टकन मसृज-अग्रणी डाकनरी पृ० ७११)

Flesh अर्थ—मांस इस शब्द का अर्थ निम्न है—

1—The muscular part of animal

प्राणी का स्नायु।

2—Soft pulpy substance of fruit

फल का नरम भाग गूदा।

3—That part of root fruit etc which is fit to be eaten

जो फल आदि में जो भाग खाया जा सके वह भाग।

Stone—पत्थर इस शब्द का अर्थ निम्न है—

1—Stone of a mango

आम का गूठनी

2—Stone in bladder

पत्थर।

(English Dictionary by J Ogilvie)

५—यसमान में माने जाने वाले प्राणीवाच्य शब्दों तथा मांस मात्स्यादि शब्दों के अनेक अर्थ

पत्थर—आजकल यह शब्द मांस का नाम माना जाता है परन्तु



आमिय पले ॥ १३३० ॥ सुन्दराकाररुपाक्षी सम्भोगेलोम  
सम्भवयो । ( अनेकाथे )

अथ—आमिय—मात, सुन्दराकाररूप आदि सम्भोग लाभ और  
रिगदग है ।

‘पल श’ का अर्थ आनन्द का वह तरह का गोल रात बिग  
और मात व रथ में प्रसिद्ध है । परन्तु पल के अर्थ के निम्न अर्थ समझ  
जाते थे—

‘पल पलानो धायवक तुषा वस बडगरा ॥ ११८२ ॥  
(अभिधायिधायिनि)

अर्थात्—पल पलान धाय का छिन्ना तुष और बडगर ये भू  
के नाम है ।

अत्र नाम से आज बररा गीर बिष्णु का अर्थ समझा जाता है किन्तु  
इसके अर्थ स्पष्ट मातृ भातु पुरान या में वा उपन की गतिन ग कर  
चुके हो, होते हैं । (गालिग्राम अथवा गालिग्राम) ।

य सब उपयुक्त उद्धरण इन का आगम यह है कि मात धाया अस्थि  
आणि गालिग्राम जिस प्रकार प्राणिमा व अगा व लिय आते हैं उसी प्रकार  
वनस्पति के अगा व लिय भी आते हैं । तथा जिन गालिग्राम का अर्थ इन प्राणी  
ममज्ञते है उा छत्ते का प्रयोग वनस्पति और परमाा आणि धाय  
प्राणी के लिय ना होता है । एमी परिस्थिति में लिय गप नास्त्री के  
विपरणा के अवनिणय म विद्वाना द्वारा गना हुना अवमभव नहीं है ।  
यही कारण है कि वेना जनागमा तथा बीडपिका म आन वा  
सत्काशन साधप्राणी के अर्थ में बात दादा दादा को प्रमना तथा  
परिस्थितियों का विचार विना अथ वा अनथ करने आज का ये  
वतिदय विद्वाना न अनेक प्रकार की विवृतिया धमे दी हैं ।

अब हम हम विषय का रम्भा न करके यहा पर कुछ ऐसे शब्दा  
की सूचि देने हैं जिन के अर्थ वनस्पति और प्राणी दोनों होते हैं ।





राजपुत्र	राजकुमार	बल्मी-गोरा
बराह	गुजर	नागरमोघा
द्वदष्टा	मुल की दाढ़	गालूम
विप्र	ब्राह्मण	पीपल का वटा
जगद्व	पक्षी जगद्व	गमल
बारी मरुटी,	बारी	कौच व बीज
वानराबीज कवि	बारी	कौच के बीज
मासफल	मास	बेगन
कोविला कोकिलान्न	काय-कोयल की आँख	ताल भवान
हस्तिकण	हाथी का बान	गाल एरड की जड़
खक	खमड़ी	छिलका
अस्थि	हड्डी	बीज गठनी
भुजग	गाय	नागकमर
रादना	जवान स्त्री	गलाब

### ७—वर्तमान काल में कुछ प्रचलित शब्द

शाह	प्राणी बाघर	वनस्पतिबाघक
कुक्कुड़ी कुक्कुड़	मुर्गी मुर्गा	मुट्ट (उत्तरप्रदेश)
	(पञ्जाब गुजरात)	
भाजी	मांस (मुल्तान शिखर देव)	राधा हुआ शाक
गलग	घट्टहार पत्नी	बाजारा फल विप्रेय
तरकारा	मांस (उत्तर पञ्जाब)	साग सब्जी (राजस्थान)
धील	धील पत्नी (उत्तरप्रदेश)	धील शाक की भाजी
गालहानी	गिलहरी (उत्तरप्रदेश)	गाक

रज्जवालु	स्त्री	छुई-मुई गोया
पोपग	विमल अग (मालवा)	हरा चना (गुजरात)
धूल	विमल अग	आम्र फल
छाँची	बकरी	मूटट (पजाय)

उपयुक्त विवरण से यह बान स्पष्ट हो जाती है कि अनुप गन्ध एव है जिसका प्रयोग आज कल का चारू भागा में भी प्राणियों तथा वनस्पतियों दोनों में होता है एवं प्राणियों के अग तथा वनस्पतियों के अंगों के लिए भी ऐसा ही है। तथा यह भी स्पष्ट है कि एक द्रव्य का जय — जय काल और भाषा आदि की अनेकता में भी भिन्न भिन्न हो जाता है। इस नियम का पुनः वही है जो प्रमाण परिस्थिति का नाम माया एवं व्यक्ति के चरित्र आदि का समझ कर उनके अनुकूल अथ बौद्धिकार करे।

#### ८--भमण भगवान महावीर और भग्याभय विचार

मगधतीमून गन्ध १८ उद्गा १० में भमण भगवान गन्धो तथा सामि नामक ब्राह्मण का एक प्रमाण आता है। उस में बतलता है कि एकदा भगवान वाणिज्यधाम में पधारे। वहाँ सामि नामक ब्राह्मण रहता था। वह धनाढ्य अतिशय भगवन् भगवान तथा भगवन् आदि समस्त ब्राह्मण गाम्त्रों का पारंगत विद्वान् था। वह पादयो गिर्यों तथा बहुत बड़ कुटुम्ब का अधिपति था। एक दिन वह प्रेम महावीर के पास भगवन् भगवान में आया और उनसे अनेक कृत प्रश्न पूछे। उन में कुछ प्रश्न भग्याभय सम्बन्धी भी पृष्ठ या उसका विवरण इस प्रकार है —

[प्रश्न] सरिमवा से भले ! कि भगवन् भगवान ? [उत्तर] सोमिला ! सरिमवा [मे] भगवन् भगवान वि । [प्र०] से केणउटण भने ! एव सुच्चइ—सरिमवा भगवन् भगवान वि । [उत्तर] से नून से सोमिला ! भगवन् भगवान नून सुविहा सरिमवा पनत्ता

१ सरिमव दिग्ग प्राकृत गन्ध है। इसका एक अर्थ रूपद (१ सा) हाता है और दूसरा अर्थ समानाशय्य मित्र होना है।

त जहा मित्त सरिसवा य धनसरिसवा य । तस्य ण जे ते मित्तगरिसवा ते  
 तिबिहा पनत्ता, त जहा सहआयवा, सहवड्ढियवा, सहपमुक्कीलियवा, ते ण  
 समणाण निग्गयाण अभवत्तया । तस्य ण जे ते धनसरिसवा ते बुबिहा  
 पनत्ता, त जहा-सत्थपरिणवा य असत्थपरिणवा य तस्य ण जे ते असत्थ  
 परिणवा ते ण समणाण निग्गयाण अभवत्तया । तस्य ण जे ते सत्थपरिणवा  
 ते बुबिहा पनत्ता, त जहा-एतणिज्जा य अणसणिज्जा य । तस्य ण जे ते  
 अणसणिज्जा ते समणाण निग्गयाण अभवत्तया । तस्य ण जे ते एतणिज्जा ते  
 बुबिहा पनत्ता । जहा-जाइवा य अजाइवा य । तस्य ण जे ते अजाइवा  
 ते ण समणाण निग्गयाण अभवत्तया । तस्य ण जे ते जाइवा ते  
 बुबिहा पनत्ता, त जहा-लुद्धा य अलुद्धा य । तस्य ण जे ते अलुद्धा ते  
 ण समणाण निग्गयाण अभवत्तया । तस्य ण जे ते लुद्धा ते ण समणाण  
 निग्गयाण भवत्तया । त तेणठण सोमिन्दा ! एव बुच्चइ-जाव अभवत्तया  
 वि'

अर्थात् — (प्रश्न) ह भगवन् ! सरिसव का आप भद्व मानते  
 हैं अथवा अभव्य ? (उत्तर) ह सामिल ! सरिसव पुत्र भव्य भी  
 है अभव्य भी है । (प्रश्न) ह भगवन् ! इमरा क्या कारण है ? (उत्तर)  
 हैं सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मण बन्धुओं में प्रचार का सरिसव कहा है (१)  
 मित्र सरिसव समानवयस्क (२) और धाय सरिसव । इम में जो  
 मित्र सरिसव है वह तीन प्रकार का है (१) माय ज मा हुआ (२)  
 साय में पला हुआ और (३) माय में खेला हुआ । ये तीनों प्रकार के  
 सरिसवा (समानवयस्क) मित्र धमण निग्गवा को अभव्य हैं । जो धाय  
 सरिसव है वह दो प्रकार का है । दस्त्रपरिणत और असत्थपरिणत  
 इस में जो असत्थपरिणत-अग्नि आग्नि दस्त्र से निर्जीव नष्ट हुआ—यह  
 धमण निग्गवा का अभव्य है । और जो दस्त्रपरिणत (अग्नि आग्नि से  
 निर्जीव हुआ) है वह दो प्रकार का है (१) पणाय इच्छा करने योग्य  
 निर्जित (२) अनपणय न इच्छा करने योग्य-मरण्य । इस में जो  
 अनपणय है वह धमण निग्गवा का अभव्य है । जो पणाय सरिसव है

यथा प्रकृतं वा है (१) याचिन—मोती हुद (२) अयादिउन्नी मोती हुई। इम सं वा अयाचिन गरगा है वं अमय निर्मो को अमय है। वा याचिन गरमों है वं वा प्रकृत की है (१) प्रात हुद खीर (२) न प्राप्त हुद। अम सं वा नया मिता वं अमय रिप्रवा का अमय है। ओ सत्मा अमय निप्रवा का मिता ह्य मां वन मय है। नू गामिर। इम निप्र म वहुता है कि सरिमय मय ओ है अमय ओ है।

(प्र०) माता ते यने! हि भवत्या अभवत्या ? (उ०) तामिन्ना।  
यामा भवत्या वि अभवत्या वि (प्र०) ग के गट न जात्र अभवत्या वि ?  
(उ०) त नूण त तामिन्ना। अभवन्तु नान्तु बुद्धि। माता पत्नीता त जहा रत्न  
माता य का पत्नीता य । तस्य न ज त का पत्नीता ते न तस्य गीरीया माता।  
पत्नीयमाना बुद्धिपत्नी पत्नीता त जहा नावत्त भवत्ता माता। कसिप  
मत्तामिरे पास माते कसिप विपत्नी यत्ता। जट्टापत्नी माता। ते न  
समगा। निगदा। अभवत्या । तस्य न ज ते द्वावमाता त बुद्धि।  
पत्नीता त जहा-अवमाता य पत्नीयमाना य । तस्य न ज त अवमाता ते  
बुद्धि। पत्नीता त जहा-बुद्धिपत्नीता य द्वावमाता य त न समगा।  
निगदा। अभवत्या । तस्य न ज ते पत्नीयमाना त बुद्धि। पत्नीता त जहा  
सत्यपत्नीया असत्यपत्नीया य-एव जहा पत्नीतरेविना जात्र ते  
ते मट्टेन जात्र अभवत्या वि ।

अर्थान—(प्र०) है जगत् । मास तय है कि अमदय ?  
(उ०) ह मोमि । मास भय भी ॥ अमदय मा है । (प्र०) ह  
मयवत । यः किम कारण म आर कः है कि मास भदय भी है,  
अमदय भी है ? (उ०) ह मासि । बाह्यय यथा य मास ॥ प्रकार क  
वहा है वः इम प्रकार—द्वय मास और बाः मास । इन म जो बाः  
मास है वः गात्रन म ॥ वः बापाक सह बाह्य भयान है ॥ इम प्रकार—  
थावन माः । आमात्र कानिह मासगीर पाद मास पा गुण चैव  
यमात्र अठ और आशङ्क य अमय निरुपयों का अमदय है । इन म जो  
द्वय मास है—वह माः दो प्रकार का है माः इम प्रकार—अय मास और

वायु मांस । उस में जो अक्ष मांस है वह भी दो प्रकार—'स्वर्णमांस' और 'रौप्यमांस' । यानी चाँदी का मांस मोन का मांस (एक प्रकार के तोलन के बाँट) । ये भी अमण निग्रयो को अमश्य हैं । जो घा घ घण (उड्ड) हैं वे भी दो प्रकार के हैं—'गम्भपरिणत' (अग्नि आदि में अक्षित हुए) और 'अगम्भपरिणत' (अग्नि आदि से अक्षित नहीं हुए—मजीब) । इत्यादि जैसे घाय सरसो के लिये कहा वही घाय मांस (उड्ड) के लिये भी समझ जाय । यावत्—यह इस हेतु से अमश्य भी है ।

यानी—अग्नि आदि में अक्षित उड्ड भी दो प्रकार का है—एषणीय और अनेपणीय । माधु के निमित्त अग्नि में न राधा हुआ निर्दोष और माधु के निमित्त न राधा हुआ मण्ये । इस से जो अनेपणीय है वह अमण निग्रयो को अमश्य है । एषणीय उड्ड का भी प्रकार के हैं याचित (मांस हुए) अयाचित (न मांस हुए) । इन में जो अयाचित राधे हुए उड्ड हैं वे अमण निग्रयो का अमश्य हैं । और जो याचित राधे हुए उड्ड हैं वे भी दो प्रकार के हैं—मिष्ट हुए (प्राप्त) न मिले हुए (अप्राप्त) । इन में जो नहीं मिल ऐसे राधे हुए उड्ड अमण निग्रयो का अमश्य हैं । और जो राधे हुए मांस पर प्राप्त हो गये हैं एव निर्दोष उड्ड अमण निग्रयो को भक्ष्य (खान योग्य) हैं । इति । इस कारण से मांस भक्ष्य भी है अमश्य भी है ।

(प्र०) कुलत्वा से अतो कि भवत्वा अभवत्वा ? (उ०) सौमित्रा । कुलत्वा भवत्वा वि अभवत्वा वि । (प्र ) अथ कुलत्वं जाय अभवत्वा वि ? (उ०) स नूनं सोमित्रा । त अभवत्वा अनेषु बुद्धिः कुलत्वा पनत्ता त अहा—इति कुलत्वाय भवत्वा य । तस्य न जे से इति कुलत्वा से तिविहा पनत्ता त अहा—कुलत्वाय इति कुलवत्त्वा तिया कुलमाठया इति, तेन समजाय निमजाय अभवत्वा । तस्य न जे से भवत्वा एवं अहा पनत्तरित्वा से तेषट्ठण आव अभवत्वा वि । [ भगवतो गतक १८ वट्ठ १० ]

अर्थात्—(प्र०) हे भगवन् ! आप कुत्सा भक्ष्य मानते हैं अथवा  
अमम्य ? (उ०) हा सामिल ! कुत्सा भक्ष्य भी है अमम्य भी है ।  
(प्र०) हे भगवन् ! निम्न हेतु से भक्ष्य है ? किस हेतु से अमम्य है ?  
(उ०) सामिल ! तुम्हारे ब्राह्मण दास्या में कुत्सा का प्रकार का बहा  
है—स्त्रीकुत्सा (स्त्री) और घायकुत्सा (कुत्सी) । इसमें जो स्त्री  
कुत्सा है वह तीन प्रकार का है वह इस प्रकार—कुत्सा कुलवधू  
और कुलमाता । ये सब श्रमण नियमों के लिये अमम्य हैं । इस में जो  
कुत्सी अनाज है इत्यादि वस्त्र-भक्षण ममा घाय के समान जानता ।  
इसमें यह भक्ष्य भी है अमम्य भी है ।

याना—अग्नि आदि स अचित्त उपनीय याचित प्राप्त निर्णय  
कुत्सी अनाज ही श्रमण नियमों का भक्ष्य है । बाकी अन्य सब कुत्सा  
अमम्य हैं ।

मार्गा यह है कि—मगजनाम्न र्म निगठ नायपुत्त (श्रमण  
मगवान् महाश्वर) न—तरिमन् मम तथा कुत्स्य इन तीनों गणा  
के अथ प्राणिपरक वनस्पतिपरक भी बनगये हैं ।  
उनमें से उद्देश्य स्पष्ट वन् कि प्राणिपरक तथा द्रव्यपरक आदि  
पन्थ तीक्ष्णकर्ता तथा निग्रय श्रमणों तथा श्रमणीयों के लिये मर्यादा अमम्य  
है । वनस्पतिपरक पन्थों में न भी वाच्यमनियों अग्नि आदि के प्रयोग से  
निर्जीव है और यदि निग्रय श्रमण कश्चित् नष्ट न की गयी हों तो  
उसमें से आवश्यकता पन्न पर निग्रय श्रमण का मागन पर प्राप्त  
हो गया है एसा निर्णय आचार निग्रय श्रमण के लिये भक्ष्य है ।  
अमम्य सब प्रकार का आहार हमारे लिये अमम्य है ।

इसमें स्पष्ट है कि श्रमण भगवान् मन्वीर तथा उनके निग्रय श्रमण  
सामिपादार्थ कल्पि ग्रहण नहीं कर सकते । तथा यन्त्री स्पष्ट है कि  
वर्षा के अनेक अथ होत हैं उन अर्थों में स दिन प्रत्यक्ष र्मा  
अथ उपयुक्त है वही अथ करना साधारण व्यक्ति का कर्तव्य है और ऐसी  
धर्म महा उसकी विद्वता की सच्ची वसा है । अन्तर्गत अथ करना

विद्वत्ता के लिए गोमात्रद गद्दा है किन्तु विद्वत्ता का दूषित करने वाला है।

अथ ह्य यन् पर विवादास्पद सूत्रपाठ के वास्तविक अर्थ के लिये विचार करे।

९--भगवत्सूत्र का (विचारणीय) मूल पाठ इस प्रकार है --

"तस्य न रेवती न मारुतद्विती न मम भट्टाए कुये नयोप-सारीरा  
उपकवशिया नहि ना भट्टा । अयि से मने पारियासिए मरभारकइए  
कुवकुडममए तमाहुराहि । एएण भट्टा ।

(भगवत्सूत्र, शतक १५)

समय वास्तव नवागीटीकाचार आचार अथयदवसुरि द्वारा की गया इस सूत्रपाठ की टीका तथा इस का अर्थ इसी स्तम्भ ११ के विभाग के अन्त में विस्तृत लिख जाय है तथा इस अर्थ की पुष्टि में अग्रे गये छ म उनके समवागम तथा निवृत्त भविष्य में ही गये तीन आचार्यों के उद्धरण भी द जाय है। अब यहाँ पर इस पाठ के विवादास्पद शब्दों के वास्तविक अर्थ समझाए जायेंगे।

इस शब्दों के इस स्थान पर संस्कृत अथवा अध्यात्मिक शब्दों के प्रचलित अर्थ लगे रहित नहीं क्योंकि यहाँ तो वे अध्यात्म के अर्थ में प्रस्तुत (उपमान) किये गये हैं। अब इनके अर्थ ब्रह्मकाय शब्दों का तो लेने उचित है। यदि इन शब्दों के अर्थ ब्रह्मस्वतन्त्रता मिल जाय और वे ब्रह्मस्वतन्त्रता इस राग के निदान के अनुकूल हों तो अवश्य स्वाभार कर देने चाहिये। मुन विमान के लिये यही गोमात्र है।

हम यह स्पष्ट कर जाय हैं कि प्राणिजगत्मात्र इस राग का निदान कभी नहीं हो सकता। वरन् शब्दों का संस्कृत भाषा में उपलब्ध होने से नीचे लिखे विचारणीय शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्दों का ज्ञान लेना भी परमावश्यक है --

इस सूत्रपाठ से निम्नलिखित गद्य विचारणीय है —

अथमातृधा गद्य	संस्कृत पद्या
तुये कवयिभरा	द्व कपान गरीरे
उदकवदिया	उपमृत
नो अटठो	नवार्थो म्ति
अप्र	अयय
पारियातिष्	पय विन
मन्त्रारकम्	मानार कृत्
कुक्कु	कुक्कु
मन्त्र	मन्त्र

१०—कवयि-कपान कया था ?

कवयि गद्य वा अर्थ आज कल बहुत ही समझा जाता है पद्य कपान एक प्रकार का आद्य वनस्पति है । वह पूरा का पूरी उपमृत है। सक्ती है और बहुत गमयतक टिक सकती है । इसके सवन में उष्णता विलम्बित रहती है। रक्तवित्त और अनित्य रोग गान होता है । कपान और कपान से बन हुए गद्य के अर्थों में भिन्नता होती है । उगवा शीरा इस प्रकार है —

१—नवीत—पारिपत एक प्रकार की वनस्पति (मुधन महिला फलवत्)

२—कपान—गरीम पाप (वद्यत गन्मित्र)

३—कपान—कपातिका—मन्त्र कोन पेठा मुद्रमाण (निषट्-गन्माकर)

४—कपान—कपान पत्ती

५—कपान—मन्त्रा सार

६—नवीत—हरा मुरमा (निषट्-गन्माकर)

७—गरीपत—मन्त्रावली (भावप्रकाश)

८—कपान—इलायचा



१—कापोती—कृष्ण कापोती श्वेत कापोती वनस्पतिर्वा (सुश्रुत स०)

कृष्ण कापोती तथा श्वेत कापोती शब्दों से पाठक काला या श्वेत वृक्षों का समझें। परन्तु वास्तव में ये शब्द किस अर्थ के बोधक हैं इसका खुलासा नीचे दिया जाता है —

“श्वेतकापोती समूलपत्रा भक्षयितव्या (सुश्रुत संहिता)।

सतीरं रोमशां मूलीं रसेनक्षुरसोपमाना।

एषरूपरसां चापि कृष्णां कापोतीमादिशत ॥

कौशिकीं सरिषं सीरशं सत्रयास्तु पुनरु।

क्षितिप्रदेगा वास्त्विकराविता योजनत्रयम् ॥

विशेषा तत्र कापोती श्वेता वास्त्विकमूर्धनुः ॥

(कापोती प्राप्तिस्थान-सुश्रुत स०)

उपपुष्प शब्दों से स्पष्ट है कि वनात तथा वपोत में वन हुए शब्दों से अनेक प्रकार की वनस्पतियों तथा अन्य पदार्थों का बोधक है। वनात का रंग जसा हरा सुरमा हान से इसका नाम वपावाजन कहा जाता है। छोटी इलायची का रंग वपात के सदृश होने से वपावज्जर्ण कहा जाता है। इसी प्रकार पड़वा रंग भी वृक्षों के समान ऊपर से हरा हान से वपोत कहा जाता है। अनेक वपावज्जर्ण के पदार्थ लिये चुके हैं —

(१) वपात = पारापत (एक प्रकार की वनस्पति) (२) पारीत पीपर (३) पेडा (कुम्भा) (४) वृक्षर वनी।

इनके गुण-लक्ष्यों का वर्णन बलक शब्दों में इस प्रकार है —

१—पारापत —

पारापत सुमधुर हृद्यमस्वस्विकातुत सुश्रुत संहिता)

२—पारीत पीपर —

“पारिशा दुर्जर स्निग्ध कृमिशुक्रकफप्रह ॥५॥”

फलेऽप्यो मधुरो मूलो वपाय ह्यावु मज्जक ॥६॥

(भावप्रकाश पट्टाविवा)

३—कुम्भापत फल बाग मफलं कुम्भेष्टा पेडा —

(ब) तिष्ठत्येव कृत्वाह वास मध्य वक्षोपहम ।

शुद्ध कृत्वाह सार शोषन वस्तिगोपनम् ॥२१३॥

सरंटाहर हृद्य पय्य चेतो विकारिणाम् ॥२१४॥

(सुभतसंहिता ५६ वसवग)

अव-पडा कम उग नीलवत्ता वस्तिगापन सर्व शोषद्र है ।

(स) "तय कृत्वाह वक्ष मधुर घाहि शीतलम् ।

हृद्य रक्त वित्तल मलतस्मभर परम ॥॥"

अव-छोटा पेडा बाहो नील रक्त-वित्तनाग तथा मलरोधक है ।

(ग) 'कृत्वाह नीलल वृष्य स्वाद पाकरत मुद ।

हृद्य कम रक्तस्यदि इलेमल वातवित्तजित् ॥

कृत्वाहनाक मुद सतिपातववराभगोदनि दाहहारि ॥"

(अथदेव निगष्टु)

अव-पेडा नीलल वित्त नाग वर, आम दाह भाति को धान करने वाला है ।

(घ) कृत्वाह स्थान पुष्पकम धीन पुरत दृष्टकलम् ॥५३॥

कृत्वाह बहुल वल्य वद वित्ततत्रवातनुत् ।

आल वित्तपह दित मध्यम वक्षारवम् ॥५४॥

वद नातिहिम स्वादु सभारं शोषनं लघु ।

वस्तिगद्विजर चेतोरोहहृत्तर्धशोपजित् ॥५५॥

कृत्वाहो तु भूग लघ्वी वक्षारवि कीर्तिता ।

वक्षारु घाहिनी नीता रक्तवित्तहरी मुद ॥५६॥

पय्या वित्तताडनिजननी सभारा वक्षारनून ॥५७॥

(आवमनाश निगष्टु सारवर्ष)

अव-पेडा रक्त वित्त और वायु शोषनाशक है । छोटा पेडा वित्त नाग नीलल और वक्षजनन है । बड़ा कोलाउष्ण मीठा शोषक है । हृदयरोग नाग तथा सबशोषकारी है ।

ग्राह्य गीत, रक्त पित्त दोषनाशक । यदि पका हुआ तो अग्निवर्धक है ।

(४) रक्तुतर पानी का मांस —

“रिक्तं च द्रव्यं गुरु रक्तपित्तानक वातहर च ।

सर्वमांसं दातविध्वंसि वध्य ॥

अर्थ — मांस रिक्तं गरम भारी तथा रक्तपित्त व विकारों को पचा करने वाला है वात को हरता वाला है । सब मांस दातहर् और वध्य है ।

यहाँ पर ‘वकीय’ शब्द है चार अर्थों में तीन रक्त वनस्पतिपरक हैं तथा एक अथ मांसपरक है ।

भगवान् महावीर स्वामी को रोग थे —

(१) रक्तपित्त, (२) पित्त-वर (३) दाह (४) अतिमार ।

इन रोगों को जान करन के लिए इन चारों पदार्थों में से छोटा कुम्भाण्ड (पेड़ा) बना हुआ औषधरूप दिया जा सकता था क्योंकि इन में से यही औषध इन रोगों को शान्त करने में समर्थ थी । परन्तु तथा पारीस पीपर ये दो वनस्पतिपरक औषधियाँ इस रोग को दात मर्दा कर सकती थीं । मांस तो इस रोग को पचा करने वाला, बढाने वाला है । अतः गुरु को भावों रक्ता व्याधिका ने भगवान् महावीर स्वामी के रोग के समनाश के छोट पेठ के ऊपर ही सम्भार दिया थे जिस में सदेह का अवकाश नहीं ।

प्राचीन जूनि तथा टासाकारा ने भी दूरे वकीयमरीरा<sup>१</sup> का अर्थ दा छोटे पेठ का दिया है यह हम पहले ज्ञित आये हैं ।

१. दूरे वकीयमरीरा — ये तीन शब्द हैं । मरीरा शब्द ‘वकीय’ से निष्पन्न पुल्लिङ्ग शब्द द्वय का प्रान्त है । यदि यह मरीराणि (नपुंसक लिङ्ग) शब्द का प्रयोग होता तो इसका अर्थ पानीधरार पर आग हो सकता था । क्योंकि नपुंसक मरीरा शब्द ही प्राणी मरीरा या मुँह के अर्थ में आता है किन्तु शास्त्रकार को यह भी अभीष्ट नहीं था । अतः उन्होंने यहाँ मरीराणि का प्रयोग न करके पुल्लिङ्ग में मरीरा शब्द

वशाति त्रन सार्धं च तथा निद्रां श्रमन को उमके आन निमित्त तयार  
 तिय सय आनार आनि सन की मनाही है । इस वन को भगवान् महाशार  
 न स्वय मोक्षित आश्रयन के प्रान वरन पर स्पष्ट रत्न है कि निद्रा  
 श्रमन के निमित्त सेवा किया गया आनार अनवनीय है इस लिये  
 अनन्य है, इसका आनार साधन स । अन यह सन्तोष आहार होन के  
 कारण भगवान् महावीर ने मित्र मुनि का आन के लिये मना कर लिया ।  
 यह भीषण रेवनी आदिवा न भगवान् मनावीर के लिये बनायी थी  
 भगवान् न अपन बन्धनान द्वारा इस बात को जाना और कहा कि  
 'अरिय से अने वास्तव्यामि ए मज्जार-कडए कुक्कुड-मसए समाहराहि ।  
 एण्ण सन्तो । अर्थात् दूसरा जा रेवनी न अपन लिये मज्जार-कडए  
 कुक्कुड मसए' तयार करके अर्पण रख लायी है वह लाता ।

११—“मज्जार कडए कुक्कुड मसए” क्या था ?

(क) मज्जार-मास्र

'मज्जार' शब्द का सम्बन्ध पर्याय मास्र है । इसका अर्थ मांस-  
 का बिन्नी समझा जाता है ।

का प्रयोग किया है और उसका अर्थ फल के साथ ही सम्बन्धित होन का  
 मान्य है । जाग आन वाला अन्न का भी पुष्टि होन से इसा मन  
 का पुष्टि करता है ।

दूसरी बात यह है कि मांस के मांस शरीर का प्रयोग नहीं  
 होता । विषाद सूत्र में मांस का वर्णन है मगर बिना जनिवाचन सा  
 के साथ शरीर का प्रयोग नहीं हुआ है । कि तु वनस्पति का यह  
 प्रकार वनस्पति शरीर का प्रयोग मन्त्र जननमा में पाया जाता है ।

इसमें भी यह स्पष्ट है कि यहाँ पर शरीर का सम्बन्ध वनस्पति  
 के साथ ही है । इसमें भी वस्तुतः मांस का अर्थ निद्रा ही होना ।  
 अन स्पष्ट है कि यहाँ पर दो साधन छोड़ देना फल का  
 मुर का अर्थ ही ठीक है । वशाति मुर का साधन फल का अर्थ ही उन  
 के अन्तरक गुण का डाला जाना है जैसे साधन जावना का मुरका डाला  
 जाना है ।

परन्तु यहाँ पर मार्जार शब्द भी वनस्पति विशेष का नाम है जिस वनस्पति का जोषधि में घीनल्ला, चायुसमन आदि गुण लाने के लिये भावना या पुनर्दा जाता है, जिसका प्रभाव गर्मी (तृष्णता-दाह) इत्यादि रोगों का नाश करने में उपयोगी है। वक्ष्य निषण्डुओं तथा जैनागमों में भी इसका ऐसा वनस्पति अर्थ दिया गया है। प्रनापनासूत्र के प्रथम पत्र में वक्ष्य के अधिकार में मज्जार शब्द की व्याख्या इस प्रकार है —

१—“वक्ष्यल-पोरय मज्जार बोद्धवलिय पालकका”।

(जैनागम भगवतीसूत्र सुत्तपट्ट १ हरित विभाग)

जैनागम भगवतीसूत्र २१ वें शतक में भी ‘मज्जार शब्द वनस्पति के अर्थ में आया है —

२—“अग्गसह-वोयान हरितय-तद्धुत्तेज्जन-तण वक्ष्यल पोरय मज्जार पाद विलिप्पमा” (भगवतीसूत्र)

३—‘मार्जार —विराटिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः”

(भगवतीसूत्र गतक १५ टीका)

४—हृत्तरं भीरु मार्जार किशुका इगुनी म वण ।

अगस्त्ये मुनि मार्जारामगस्तिवगसेनका” ॥१५३॥

(वज्रयती भूमिकांड वनाध्याय)

अथ—हृत्तर (त्रिगोटी) के भीरु मार्जार किशुका इगुनी ये नाम हैं। इगुनी शब्द पुल्लिंग और स्त्रीलिङ्ग में है। अगस्त्य के मुनि मार्जार अगस्ति वगसन ये नाम हैं ।

५—अगस्ति की पिप्पला सारक बुद्धिग भावन की रवि उत्पन्न करने वाला त्रिपाय नागक इत्यादि अनेक गुणों वाली है । (गालिग्राम)

६—मार्जार—रत्नचित्रक नामक पौधा (राजनिषण्डु) ।

७—मार्जार—विडाली भूमिकुपमाण्ड (वक्ष्य शब्द सिधु पृ० ८८९)।

८—मार्जार—त्रिली (वनस्पति विभाग) विडालिका वक्ष्यपर्णी ।

९—मार्जार—चटान (न०स० थी ह्रमच द्राधाय)

१०—मार्जार—एक प्रकार की वाम्बु (भगवती टीका)

११—माजरी—बराही विराजिवा बराह बराह, स्वयं  
(बराह गति-नु) (बराहगमावगम) (बराह निघण्ट २ भाग) ।

१२—बराह बराह (हिन्दी विराज)

माजरी—अर्थात् विराजिवा (लवण) व बस अम्भुन गुण ह वे नीचे  
के नीचे में दिखे जाने ह —

स्वयं बराह तिवत लघु नयति हिम ।

दीपन पादा दक्ष बरपिताब्जनागहृत ॥

तथा छदिस्तयास्मान नूलमान विनागयेन ।

बासवासद्वहिवाइव क्षप्र क्षपयति १२ वम ॥१॥

(बराह गति-नु पृ० १०१)

अनेकापतिन मन्त्रगुह्य —

१ माजरी गम व भी भी अतव अय (वर्गयगवी दान) अने  
कोनों भी निघण्टुओं में व्यवस्थित ह उनमें से यह कुछ वा उत्पन्न ह  
वे पादों को जानकारा में बढि होगी—

२ माजरी—मन्त्र व विगदु स्तु माजरी गम व ने १

तूलिना बराहविवा तूलनपागदरा ॥ १२२

मावली ममये वृते मुकुद पार हरी

विषी ताये मनादी माजरीमपके १२२

नयगायेवि माजरी विनाय बरपिता

मुक्ताम स्वयं नीचे विबुध पति १२२

बराहमार स्तुतीवद विगदु स्तु

बुधपाण्डवस्तु माजरी बुधपाण्डवस्तु १२२

महाया नये माग मयगो १२२

माजरीनी यस्तु माजरी ग १२२

माजरी—विहा विहा (हिन्दी विहा)

अर्थात्—अथ वटु ताण लघु चक्षुष्य, ठण दीपन, पाचक रुचिकर। कफ विम मल मल करन वाला। तृष्णा (प्यास), वमन, आध्मानवायु गूत्र व दम का निघ नाग करन वाला। खाँसी, श्वास, क्षय आदि रोगी का गाघ दूर करन वाला है।

अथक प्रथम आयुर्विषय (अथर दाजी पदे कृत) पृ० ३५९ मे लिखा है कि —

लघुगन्ध कफा च तस्य रुचिकर तीक्ष्ण, पाचकाले मयूर, उष्ण, पाचक अग्निनीपक स्निग्ध इत्यु ज्य तथा विगद है, तथा वायु पित्त, कफ आम क्षय, वाती गत अनाहवायु श्वास उचकी, वांति विष, दातव्य क्षय तृष्णा पानग रक्तनीप आध्मान वायु को नाग करता है।

आयुर्विषय फल नोट पृ० ३९—म लिखा है —

लघुगन्ध का पीना का नागश प्यास बंद करन वाला उल्टी तथा वायु आदि को दूर करन क श्रिय औषध रूप में ली जाती है।

इन राज उद्धरणों से तथा लिपिनी में दिय गये उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'माजरी' दाँत व घनस्पतिपरक अनेक लय होते हैं। वायु तथा

माजरी—रसविषयक गुण लालचीना पड़ लटास

(हिंदी विवरण)

विट्ठल—हरिताल यष्टी गरिह सिन्धु, चदार्वा, त्रादय समाश्रित ॥

(घनस्पति वस्त्रस्वताभिधान)

माजरी—ताम्र भूषा माजरी गन्धमा स्युस्विगन्धुन ॥१२०७॥

माजरीविषि विगान स्यात् मारीचा माचकद्विज ॥१३३९॥

(नानाधरलमालया ध्यम्बरका)

मरालिका—Varalika—cloves carissa carissa carindos

aromatic Spice—अथ सुगन्धित माला।

(Sanskrit English Dictionary by Sir Monier Monier Williams)

गणन अथ भी हुआ है। इसके अनिश्चित विष्णु तथा अन्य भवन निर्माण पदार्थों के लिये भी मार्जार का प्रयोग होता है।

### (ख) भज्जारकण्डू का अर्थ क्या है ?

भज्जारकण्डू—भज्जारकण्डू (गणन)। (१) मार्जार नाम की वस्तु लिये बनाया हुआ। (२) मार्जार नाम मन्त्रारित किया हुआ। (३) मार्जार का भावना किया हुआ। (४) मार्जार नाम का ध्यान करने के लिये बनाया हुआ। (५) मार्जार वस्तु लिये मन्त्रारित किया गया बनाया गया हुआ है।

### (ग) कुक्कुट-कुक्कुट

कुक्कुट भी एक पदार्थ का वस्तु है, या कि बहुत सन्तानों तक टिक सकती है। इसके लिये मन्त्रों रचनेवाले विद्वान् अनेकानेक मार्गों द्वारा जानते हैं। उदाहरणार्थ कुक्कुट नाम के कुछ अर्थ नीचे लिखे जाते हैं —

१—“गुणित्वं गुणित्वं स्थितिकं गिरिवारकः।

श्रीधरकं गिरिवारकं विष्णुं कुक्कुटं गिरिवारकः॥ (निर्घटनेव)

अर्थ — १ गुणित्वं (१) स्थितिकं (२) गिरिवारकं (३) श्रीधरकं (४) गिरिवारकं (५) विष्णुं (६) कुक्कुटं, (७) गिरिवारकं के नाम हैं।

२—श्रीधर विज्ञान में मन्त्रारित वस्तुओं के लिये ‘गिरिवारक’, ‘श्रीधरक’ मार्जारक इत्यादि प्रयोग होता है। इसका अर्थ क्रमशः ‘वही मे मन्त्रारित’ ‘वही मे मन्त्रारित वस्तु’ (अर्थ) श्रीधर से मन्त्रारित होता है। मान्य यह है कि यही वस्तु का अर्थ ‘मन्त्रारित और भज्जारकण्डू का अर्थ मार्जार वस्तु से मन्त्रारित (भावना-गण, भावना-गण) होता है। वस्तु का मार्जन अथवा ध्यान करने के अर्थ में प्रयोग किया जाता, ऐसा सिद्ध नहीं होता।



“मुनिवर्णे हिमो ग्राही मोह बोधप्रयापह ।

अविदाहो लघु स्वादु वषापा कटाबोधन ॥

वप्यो दध्यो लवर इयाता—मोह बुद्ध भ्रमप्रणुत ॥ (भाष्यप्रमाण)

अर्थ—मुनिवर्णक ठण्डा, स्न राशन बाग, मोह तथा निदोष का नाशक ग्राह का गान करने वाला हुआ स्वादिष्ट वषापरममाण, वषा अग्नि को बवान धान्य बलकारक वचिस्तर और वषा स्वास बुद्ध तथा भ्रम का नाशक है ।

२—कौटिलीय अथगात्र म भी कुक्कुट शब्द का प्रयोग वनस्पति के अर्थ में हुआ है । देखिय—

“कुक्कुट—कोगातकी गानारीमूलवक्षतमाहात्म्यमाणो मातेन गौरो भवति ।” (कौटिलीय अथगात्र पृ० ४१५)

अर्थ—कुक्कुट (विषण्णक—वैगनिया भाभी) कोगातकी (तुरई), शातामरा इन के मूत्रों के साथ महीना भर भोजन करने वाला मनुष्य गौरवण हो जाता है ।

३—कुक्कुट—गात्रमली वृक्ष (ममठ का वृक्ष) (उद्यक शास्त्रिण) ।

४—कक्कुट—बीजपूरक (बिजोरा) (ममवनीसूत्र टीका) ।

५—कक्कुट—(१) कोपण्ड (२) करड (३) गानरी (निपण्डु रत्नाकर) ।

६—कक्कुट—घास का उल्ला आग की पिगारी सूद और निपाज्ज की वनस्पति प्रजा (ज० सं० प्र० न० ४३)

७—कुक्कुटी—कुक्कुटी पूरणी रक्तकुमुमा धुणवल्लमी । पूरणी वनस्पति (हमा निपण्डुसमूह)

८—कुक्कुटी—मनुक्कुटी—(स्त्री) मनुक्कुटी जम्बोरभेदे अर्थात्—बीजोर वन में से जम्बोर फल (वद्यक शब्दसिधु टीका) (राज वल्लभ)

## (घ) मसए मासक (मास से बना हुआ)

हम पहले जिन चूक हैं कि मास गन्ध के वनस्पति फलवग वा गुण आदि अनक अथ होते हैं। उन—

- (१) मास (नवमक जिन) मास वग फलवग गुण फल।
- (२) मासक (पुल्लिग पाक भुज्वा फलवग सतवार किया हुआ।
- (३) मास—गरिष्ठ पक्वान्न अनशयमघ्न)

उपयुक्त विवरण ने यह स्पष्ट है कि —

(१) जो गरिष्ठ पक्वान्न स्वाद पचाय हान हैं उनमें प्रथम नवर का खाद्य मास कहलाता था जो था गन्धर पिष्ट (पीठी) आदि से बनाया जाता था। उस में कान्त तथा लाल चन्दन का रंग दिया जाता था।

(२) एक मीठ फल का छाँवर उनके बीज या गुठलियाँ निवाल कर तयार किया हुआ फल या मर्चों का गुण भी मास कहलाता था। मास—फलवग अर्थात् फल का गुण (वयक चान्तिधु)।

(३) प्राणीभग कन्याय धानु को भी मास कहते थे।

(४) मास गन्ध (कटा मेवो फलिया के) गन्ध, गुण के लिये प्रयुक्त होता है।

## (ङ) मार्जार और कुक्कुट वनस्पतियाँ कैसा अदभुत श्रोणधीय गुण रखती हैं यह निम्नलिखित वर्णन से ज्ञात होगा —

(१) मार्जार अथवा अगस्त्य तथा अगस्ति का गिम्बा के केंद्र छन्द गुण हात हैं वह नीच के श्लोक से विदिन हागा —

“अगस्त्या भयसनो, मधुनिघ्नमुनिद्रुम ।  
 अगस्त्य पित्तकर्षजि-चातुर्विकहरो हिम ।  
 तत्पथ पीनसत्तमपित्तनक्ताध्यनागाम ॥”

(मदनपाल निघण्टु)

अर्थ — अगस्त्य प्रमेहेन मधुनिघ्न मुनिद्रुम इन नामों से पदुचाना जाता है । अगस्त्य पित्त और कफ का जीतने वाला है । चातुर्विक ज्वर को दूर करता है और नातवीर्य है । इस का स्वरूप प्रतिश्याय इत्येव राग्याध्य नामक है ।

“मुनिनिघ्नो शरा प्राकता, बुद्धिदा दक्षिण लघु ।  
 पाककाले तु मधुरा, तिक्ता चव स्मृतिमवा ॥  
 त्रिवीर्यशूलकफहृत्, पाण्डुरोगविषापघ्नत् ।  
 श्लेष्म-गुल्महरा प्रीकना, सा पक्वा रुक्षपित्तला ॥”

(शालिग्राम निघण्टु)

अर्थ—अगस्ति को निम्बा सारक कहते हैं बुद्धि दान वाली, भोजन को दक्षि उत्पन्न करने वाली हल्का पाक का में मधुर, तीखी स्मरणशक्ति बढ़ाने वाली त्रिगुण का नाश करने वाली शूलरोग कफरोग को हटाने वाली विष को नष्ट करने वाली और श्लेष्म गुल्म को हटाने वाली होती है परन्तु पक्की हुई निम्बा रुख और पित्त करने वाली होती है ।

(२) कुबकुट अर्थात् मुनिपण्णक (चीपत्तिदा भाजी) मधुकुबकुटी अर्थात् जम्बीर फल अर्थात् है इनके गुणोपा का विवरण इस प्रकार है —

(कुबकुट) “मुनिपण्णा हिमो घ्राही मोहबीषप्रपापह ।

अत्रिकाही लघु स्वादु कषायो रुक्षवीर्यन ॥

वर्णो वयो ज्वर श्वात मेह कुष्ठ धम प्रणुत् (भावप्रकाश)

अर्थ—मुनिपण्णक (चीपत्तिदा भाजी) लाल, दस्त रोकने वाली, मोह तथा त्रिगुण को नाश करने वाली दाह का नाश करने वाली श्लेष्म स्थापित कषाय रोग वाली रुख जल को बढ़ाने वाली बल तथा दक्षि कारक ज्वर श्वात प्रमेह कुष्ठ और भ्रम को नाश करने वाली है ।



(४-गमुदफा) समुक्तेन केनश्च द्विजिराज्यि वफस्तथा ।

(शास्त्रिग्राम निषष्टु हरीतक्यादि वग) ।

(५-मुहठी) मधुयष्टियष्टिमधुयष्टयाद्वा वगीतका स्मृता ।

मधुर यष्टिमधुर यष्टिका मधुयष्टिका ॥

(६-नावागिगा) वकटन गिका न की कुठिनी वातनागिनी ।

महाघावा च वकाङ्गी वकटी वामूदजा ॥

(७-भाण) गवाञ्च नु विजया त्रलोचयविजया जया ।

(शास्त्रिग्राम निषष्टु धष्टवग)

(८-अरणी) अग्निमयो इमिन्व कर्णिका गिरिकर्णिका ।

जया जयन्ती नर्कारी नात्रेयी वजयन्तिका ॥

(९-मावाकरी) गतमूनी महासोता भीरवनी शतावरी ।

महागमावरी त्वया शतशीर्षा महानरी ॥

(शास्त्रिग्राम निषष्टु गुडूप्यानि वग)

(१०-द्राशा) द्राशा मधुरसा स्वाद्वी कृष्णा चाक्षफला रसा ।

मूडीका गालनी चय यक्षमन्ना तापमप्रिया ॥

(११-पीलु) पीलु नीतगहा सना धाना गुडफलस्तथा ।

विरेचनफल शाली क्ष्याम वरभयल्लभ ॥

अयञ्चव मृत्पील महापीलुमहाफल ।

राजपीलु मन्वान मधुपीलु पडाह्वय ॥

(१२-नाड) तालस्तु लक्ष्यपत्र शशत्तुणराजा महोन्नत ।

धीताला मन्त्रतालश्च लक्ष्माताला मदुच्छ ॥

(शास्त्रिग्राम निषष्टु फलवग)

उपपुक्ता १२ उद्धारणों से स्पष्ट पता हो जाता है कि विनोदण रचित तथा विनोदण सहित नाम चिकित्साशास्त्र में पर्यायवाची हान से समानार्थक है। अतः मरकुवकुटा मरकुवकुटिका तथा कुवकुटा भी पर्यायवाची हान से समानार्थक हैं। यममन्त्रे को विविध मात्रा भी स्थान नहीं है। यथा दन्तव न ५ म मुहठी के लिये मधुयष्टि शब्द आया है और यष्टि शब्द भी आया है। यहाँ मधु विनोदण का छाड़ कर अकेले यष्टि शब्द का भी मुहठी अर्थ ही लिया है।

(२) तथा प्राणिवाचन पर्यायवाच्य अथ वनस्पति के द्वि प्रयुक्त होते हैं अथ प्रायस्क पर्यायवाच्य का वनस्पति में समानार्थ हो गया जाता है। जब कि (ब) याग का अर्थ धारो है और धर्म का अर्थ धर्म है। परन्तु यह स्वीकृत है द्वारा प्रमाण है। परन्तु दोनों का अर्थ वनस्पतिपरक बीच से बाहर होता है। (ग) वाग्लिङ्ग का अर्थ- वाग्लिङ्ग का अर्थ होता है तथा वाग्लिङ्ग का अर्थ वाग्लिङ्ग होता है। परन्तु यह दोनों पर्यायवाच्य का वनस्पतिपरक अर्थ वनस्पति पर अर्थ का मुख्य है। इनका एक ही अर्थ आत्ममान होता है।

अब हम यहाँ पर कुछ और भी उद्धरण दे कर स्पष्ट कर देना चाहते हैं —

(१—कुवकुट) (पुल्लिङ्ग) - कुवकुट नामकी वृक्ष (समस्त वृक्ष)  
(वर्णन प्रमाण)

(२—कुवकुटा) स्वीकृत—

वाग्लिङ्ग पुल्लिङ्ग नामा पुल्लिङ्ग विज्ञापित।

कुवकुटी पुराणा रक्तकुटुमा पुष्करभा ॥ ६७ ॥

(विष्णुपुराण)

उपरोक्त उद्धर्णा में हम देना है कि कुवकुट तथा कुवकुटी नाम का पुल्लिङ्ग है। इस भी वे वनस्पतिपरक अर्थ में पर्यायवाची हैं। दोनों का अर्थ वाग्लिङ्ग वन (समस्त वृक्ष) स्वीकार किया गया है।

(३—करीण) करमर्षी वन भाग्य करण करमर्ष।

सम्मान्यपुत्रका दाता मा भूय करमर्षिण ॥

(वाग्लिङ्ग विष्णुपुराण)

(४—शिवा) शिवा शिविनी शिवो मुनिमाना प्रमाणिनी।

(वाग्लिङ्ग विष्णुपुराण)

नं० ३४ उद्धर्णा में भी करमर्षी पुल्लिङ्ग है तथा करमर्षिणी स्त्रीलिङ्ग है। एक शिविनी स्त्रीलिङ्ग है और शिवा पुल्लिङ्ग है, दोनों पर्यायवाच्य वनस्पति समानार्थक हैं।

अब कुवकुटा मधुकुवकुटा मधुकुवकुटिनी और कुवकुट यथा यथा पर्यायवाची होने में समानार्थक हैं। हम लिखें यहाँ पर कुवकुट नाम का अर्थ शिवा है। यह स्वीकृत निम्नलिखित प्रमाण है।

बीजारे ५४ की गणना ज्ञातिया म म कुछ भेग भ भे गुण दोषों का  
घणन करवें हैं —

(१) बीजारा (विश्व) ५४—

दशमकासाऽर्धचिह्नर तत्प्राप्त कष्टगाधनम् ॥ १४८ ॥

सद्यस्तु बीपन हृद्य मातुलुङ्गमुदाहृतम् ।

एवक निक्ता दुजरा तस्य वस्तुमिच्छाकापहा ॥ १४९ ॥

स्वाहु गीत गद स्निग्ध मीमसास्तपित्तत्रित् ॥ १५० ॥

(सुप्तत संहिता)

अर्थ—रिक्त जाति का बीजारा ५४—तत्प्राप्तमव कष्टगोधन  
स्वास्त्य लाभो अरुचि का मिटान मान्य रूप नीपत और पाधन है ।

एवक (छिन्ना) निक्ता दुजरा वान कृमि तथा वक को नमन करने  
वाला है ।

मांस (गुण)—मांस पित्त को नाश करने वाला है ।

(२) बीजारा—मनुष्यकटा (विकारग) ५४—

बीजपुरो मातुलुङ्गो वक्षस कपूरक ।

माजपूरकल स्वाहु रमस्तु बीपन रूप ॥ १३१ ॥

वस्तुपित्तहर कष्टार्जिह्वाद्दयशोधनम् ।

दशमकासाऽर्धचिह्नर हृद्यं तत्प्राप्त स्मृतम् ॥ १३२ ॥

बीजपुरोऽवर शोक्तो मधुरो मधककटो ॥

मधुककटिका स्वाहु रोमनी गीतता गद ॥ १३३ ॥

(भावप्रकाश)

अर्थ—चिरातरा जाति का बीजारा ५४ रक्तपित्तनाशक है, कट  
जिह्वा दुग्ध नाशक है दशम कासा तथा अरुचि का नाश करता है तथा  
सुग्धा रूप है । रक्त बीजारे का दुग्ध नाश मधुर मधुककटो अथवा मधु  
ककटिका भी कहते हैं ।

(३) धीमारा-मधुकुटुली (जम्बीर) फल—

मधुकुटुलीरा मधुकुटुली (स्त्रीलिंग) मातुलङ्ग धने जम्बीर  
धने । (वचन "अतिष्ठ")

मधुकुटुलीरा गाता न्लेप्पना अप्रसाग्नी ।  
रथा स्वातुमुत् स्निग्धा वान पित्तविनाग्नी ॥

तत् फल—तत्तु फल बाल बाल पित्त-रूप रक्तकरम ।

मध्य फल—तावनामव ।

पथक फल—वर्जकर हुत्त पुट्टिकर बलकर गूलहर ।

अज्ञाननागन विषय वानपित्त-आताग्निमाद्यहर  
वाता श्रोत्रवर्णोपलब्ध ॥ (वचन "गतिष्ठ")

यत्तु तत्तु मधुर वफदमन रक्त पित्तबोपल दम्पम् ।  
धीयवधन रुचिहृत्त पुट्टिकर तपण ॥

राजनिष्ठत्तु तथा वचन "गतिष्ठ")

अर्थ—मधुकुटुली (जम्बीर) गाता न्लेप्प करन वाना राधक,  
स्वान्तिष्ठ गुरु स्निग्ध वान पित्त का नाग करन वाना है ।

जम्बीर फल—यत्तु फल तत्तु पित्त रूप तथा रक्त के लया की  
उत्पन्न करन वाला है । अथवा फल भी वचने फल व समान दार्पों का  
करने वाला है ।

तथा इसका फल फल गुल्मरता बन्नाम वाना पुट्टिकर, बलकर गूल  
की पीडा का नागर अज्ञाननागन दस्ता का राधक वाना वान पित्त  
दवात अग्निमाय का दूर करन वाला वाना अरुचि मुखन का नाग  
करन वाना है ।

तथा वचन दृष्टा माता फल रूप का दमन करन वाना रक्त पित्त  
व दारा का नाग करन वाला वचन का निवारन वाना तत्तु का बानने  
वाना रुचिहर पुट्टिकर तपण करन वाना है ।



समाप्त गन्ध (गूदा)

बृहण शीतल बुध रक्तपित्तजिनञ्च । (ब० ब० पि० व० वि०)

अथ—जम्बीर फल का गूदा—शीतल बुध, रक्तपित्त को नाश करने वाला है ।

आयुर्भित्त—उनोपधि गुणान्ग (पृ० ४१२) गुजराती घट में मधु कुक्कुटा (जम्बीर) पत्र के गदक गुणों का इस प्रकार वर्णन है—

‘मधुर ग्राह्य कृश गोमल घातकर सुरा पुष्टिकारक तथा घन कारक है । कफ रक्तपित्त विदार तथा प्रस्र को नाश करता है ।’

सारांश यह है कि जम्बीर जाति के बीजोदरे का रस तथा अधपरा फल रक्तपित्त रोग में अत्यन्त हानिकारक है एवं इसका पत्र फल रक्तपित्त माहज्वर पित्त-वन्धादि रोगों में अभिदायक है ।

पके मीठ फल का गूदा तो इस रोग में अत्यन्त लाभदायक है ।

हमने उपयुक्त ज्ञान प्रकार के बीजारा फल के गुण लोपों का वर्णन किया है ।

(१) किञ्च जाति का बीजारा रस पित्तनाशक होने से इस रोग में लाभदायक नहीं है । (२) शीतल बुध जाति का बीजारा इस रोग में लाभदायक है तथा मधु परन्तु इसका दूसरा नाम मधुकुक्कुटी होने से मधुकुक्कुटी का वर्णन आती है । है क्योंकि यदि दोनों का मधु विनियोग हुआ दिया जाये तो कड़वा एवं कुक्कुटी नाम रस ज्ञात है । यदि इन दोनों रसों का सामंजस्य अथ किया जाये तो प्रथम का अर्थ देखना जो कि जल में रहने वाला एक प्राणी है तथा कुक्कुटी का अर्थ भुज्जी होना है । इससे पुष्टि यह बतलाने का अर्थ सुगम होता है । दाता का भिन्न अर्थ होने से यहाँ मानना ठीक है कि— भगवानामृत के विवालास्पत पाठ में जो ‘कुक्कुट (कुक्कुटी) नाम आया है उससे मधुकुक्कुटी अर्थात् जम्बीर फल अथ नाम ही उचित है । (३) मधुकुक्कुटी—जम्बीर जाति बीजोदरे का मीठा पत्र फल तथा इसका गूदा रक्तपित्त में सब जाति के बीजोदरे से अधिक तथा अत्यन्त अभिदायक है ।



०—गाम्भीर्य—समल वटा

३—मातुङ्ग—बोजारा (जम्बीर)

४—भुर्ग

(१) मटा बकल का पहला अर्थ—गुनिपण्यक नामक गाक भाजी है। यह सारा इस रोग में गाम्भीर्य है अवश्य। यदि यहाँ पर इस गाक की औषधि लेना मान लें तो मटा पर मज्जार का अर्थ 'मटा' लेना चाहिये। क्योंकि मटा गन्ध कर भाजा का शाक बनाया जाता है। भाजा का गाक महा गल्लकर खटका करने का दिवाज सब जानते हैं। अर्थात् खगल की पत्र नहीं लेने में दस्तों का तथा पेचिश की चामोने में गाम्भीर्य है अवश्य परन्तु भगवान् महावीर के राग के लिये हानिकारक थी। क्योंकि भगवान् का पेचित तथा मल्लों के साथ गह और रित्तज्जर भी था। 'वर' में नहीं गानिकारक है। तथा दूसरा बात यह है कि भगवनीमुख में भगवान् मन्वीर न सिद्ध मुनि से इस औषधि के लिये कहा था कि पत्र से तदार करके जो औषध रसी है उस लाना। सो दही की धरणा डाँ कर बनाया हुआ गाक अर्थात् दिनों तन रख वन में त्रिगड जाता है और खाने लायक नहीं रहना। एवं इस कुक्कुट डाँ के साथ मसल गाँ है। मसल गाँ का अर्थ है गुला परन्तु गाक का गुदा गहा होना। इसलिये यह गाँ गाक भाजा के अर्थ में घटित नहा हा नकता। इसमें फलित होना है कि यह औषध भगवान् महावीर ने नहीं ली।

(२) दूसरा अर्थ है—'गाम्भीर्य' अर्थात् समल वा वन होता है। इस वन का पत्र हाता है तथा इसमें मूरा भी होता है। परन्तु इसका गुदा गम हान में इस रोग में गाम्भीर्य नहीं है। अतः यह अर्थ भी यहाँ घटित नहीं हो सकता।

(३) तीसरा अर्थ—बीजोरा फल है। बीजोरा कई प्रकार का होता है। जैसे गन्गल चिकोपरा समनरा, भीठा जम्बीर किच फल इत्यादि। यहाँ पर बीजोरे में जम्बीर फल अर्थात् है, क्योंकि अम्ब बीजोरा की अपेक्षा इस रोग के लिये जम्बीर बीजोरे का पका हुआ

मीठा फल ही अत्यन्त लाभदायक है। तथा कुक्कुट (मरकुट) दान का अथ जम्बीर नामक फल हा हाता है। इसका फल भी गुण भी हाता है। यह मग्न इन सब रोगों पर अत्यन्त लाभदायक है। अर्थात् 'कुक्कुट ममए' का अर्थ बीजाग (अथवा) फल के गुणों से तयार किया गया पाक मुरब्बा हाता है। तथा प्राचीन टाकावारी में सब घुणिकारों में और कल्बालसजन जो हेमवद्धाचार्य जी की गीताय आचार्यों के भी इनका यहो अर्थ स्वीकार किया है। यह मुरब्बा कई दिनों तक सुरक्षित रहता है बिगड़ना नहा।

(४) चौथा अर्थ यदि मुँह का मांस किया जाये तो यह मांस इस रोग में बहुत हानिकारक हाता है इस रोग में बन्धन लाभकारा नहीं हाता सता था। दक्षिणे —

मुँह के मांस के गुणः—

(क) मुँह का मांस स्निग्ध गुण उत्पन्न वल्य वषट्कृत गन्धिप्रेर मांसा के लिये लाभकारी तथा वाय को मल करता है।

(घट्टक निघण्टु उ० वल्लहृत्पण्यालहृत)

(ख) 'स्निग्ध उत्पन्न गुह रक्तपित्तजनक भावहर च मांस।

सर्वमांस वानविष्यति वल्य ॥'

अर्थात्—मुँह का मांस विषयता भारी गरम वल्य को बढ़ाता वाता, तपित बढ़ाता वाला रक्तपित्त को पडा कराने वाला और वायु को दूर करता है। सब मांस भारी और वात को नाश करने है।

मतलब यह है कि यह भागी मिश्रण पचाने अथवा रक्तपित्त विकार पचाने हाता है इस रोग में वद्धि होना है और रागी को बढ़ते

१—'मांस' दान नुमन लिय है। परन्तु मांसक दान पुष्टिग है और वाजोरा दान भी पुष्टिग है। एवं मांसक दान का अर्थ फल का मग्न अथवा पाक मुरब्बा ही है। तथा इस ऊपर लिय भा आय है। इसलिये यहाँ पर कुक्कुट ममए का अर्थ बीजाग पाक हो हाता है। इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है।

हानिकारक है । फिर वह पन्था चाने वनस्पतिपरत हा चाहे भांगपरत ।  
तुलना काजित —

यादाम वनस्पति है । उसरी मज्जा (गिरा) के गुण-दोष भी मूर्गे के  
मास की तुलना करते हैं इसलिए एतन्माद्य भां दम राग से हानिकारक  
है । एतलिय एन वग्य है ।

(घ) “यातादमज्जा मधुरा यत्था निक्खान्तितारहा ।

स्निग्धाढगा कफहृन्नेष्टा रक्तपित्तविहारिणाम् ॥१२५॥

(भावप्रकाश नियष्टु)

अर्थ—याताम का मज्जा (गिरा) पीसी पुष्टिकारक खात का मांस  
करने वाली गुह अन्न गुहक स्निग्ध उष्णवीर्य और कफ करने वाली  
होती है इसका भवन रक्तपित्त के रागियो का हानिकारक है ।

इस उक्त विषयन में दृष्ट है कि मूर्गे का मांस उष्णान्ति गुण  
वाला हान में रक्तपित्त रोग दाहकर पित्तउदर अतिसार तथा  
पेकिंग आदि रोगों की नाति के लिये क्वापि उपयुक्त नहीं हो सकता है ।

हम लिये आय है कि मार्जार के (१) हिणोट का वक्ष (२) अगस्त्य  
का वक्ष, (३) अगस्त्यकी शिम्बा (४) लवग आदि अनेक अर्थ होते हैं ।  
इन हिणोट (इगुली) अगस्त्य और अगस्त्य की शिम्बा इस रोग को  
शमन करने के लिये उपयोगी है क्वाकि ये त्रिणोप नागक हैं । वायु को  
शमन करने का भी इन में गण हैं । किन्तु लवग में वायु विदोष नागक  
गुण होने के साथ-साथ अनेक ऐसे विगिरट गुण भी विद्यमान हैं, जो इस  
रोग में अत्यन्त उपयोगी हैं तथा विषादास्पन्न सूत्रपाठ की टीका में श्री  
जम्भयन्तसूरि ने लिखा है ‘मार्जारो विरालिकाभिषानो वनस्पतिविशेष-  
स्तेन हृत भावितम् ॥

अर्थ—विरालक नाम की औषधि विशेष से भावना दी (सस्वारित  
की) हुई । मो ‘विरालक नाम की औषधि निषष्टकारो न लवग को माना  
है । लवग का गुणों का वर्णन हम पहले लिख चुके हैं । लवग का पुट देना  
तथा सस्वारित करना जम्बीर फल के गूने का साथ इसलिये आवश्यक है

कि जम्बीर फल का गुण वायु वर्त्त है। और वायु इस रोग में हानिकारक है। लवण में वायु को शमन करने का गुण स्थित है। मात्र इतना ही नहीं किन्तु इस रोग के अनेक संशयों का निवारण भी है।

अने 'मज्जारक्खण' गीते का अर्थ हुआ कि विशाखा नाम की  
धम्मपनि से सत्कारित किया हुआ ।

अथ मञ्जरवन्तं कुक्कुटममा गन्धे वा नीचे गित्ता  
अथ स्पष्टं हो जाता है—

वायु<sup>१</sup>, रक्तपित्त, यैजिण अनिसार बाह पित्तज्वर आदि रोगों को शांत करने के लिये, वरालव (सज्ज) नामक वनस्पति से सफाई की जाये (जम्बीर) कड़ू व गूदे का पारक (मुराबा) ।

(१२) भगवतीसूत्र क विवादास्पद सत्रपाठ का वास्तविक  
अर्थ --

भगवतीसूत्र का मूल पाठ —

ત ગચ્છાદ ન તુમ સાહા ! મેઢિયગામ નગર રેવતાણ ના-  
ગિહે તત્ત્વ ન રેવતાણ ગાહાવડનીણ મમ અટઠાણ દુઃખ-  
અવગચ્છિયા તહિ નો અટઠો અતિય સે અને પારિણ-  
કરણ કુવકુડમસણ તમાહરાહિ ઇણ અટઠો ।

इग उपयान सूत्रपाठ वा वास्तविक स्पष्टाय ५० ॥

(श्रमण भगवान् महावीर न अपन पिप्य मित्रेण-

हे सिंह ! तुम मन्त्रि ग्राम नगर में गृहीति से नन्द से

(याविका) के घर जात्रा। उमन मर लिये दा कुरे

१-भगवान् मन्मथीर का तीन प्रकार के रक्तपित्त रोग था। यह रोग वायु प्रकाश से उत्पन्न होता था। यह रोग वायु प्रकाश से उत्पन्न होता था।

२-यद्यपि इमं वनस्पतिपरकं बीजम् मृत्तुमात्रेण  
मील्य ये लोभी जन निग्रहः श्रमण इति चेन्न भवति  
निग्रहः श्रमण उक्त ग्राह्य नहि कर सकट इति चेन्न भवति

कर पना कर तयार किये हैं उसी का आवश्यकता नहीं है (आनाकर्मों पर यत्न होना) । पर उसके बड़ा कुछ नि पढ़ते भात्रीर (लखन) नामक जनपति में मस्कारित (भावना लिये हुए) बीजोरे (जम्बीर) पद के गुप्त ग तयार किया हुआ औषधीय पात्र (मरवा) पना हुआ है (जा कि उमन जगत पर के लिये बना कर तयार करके रखा है) उस की आवश्यकता है । उस के आजी ।

यहां अब पावान टापाकारा तथा वर्णिकारा न किया है, जा कि उपयुक्त विद्यमान स मरवा की प्रमाणित हो जाता है । अतः —

(१) अप्यापक धर्माना कासाध्या इस मूनपाठ का अब किया गया है कि —

उस समय महावीर स्वामी ने सिद्ध नामक अपने निधय में कहा — तुम मन्त्रि गात्र में रक्ता नामक स्त्री के पास जाओ । उस में मरे लिए दो क्यूतर पका कर रख दें । वे मृग नहीं चाहिये । तुम उससे कहना — बल बिल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी का मांस तुमने बनाया है उसे खो ।

पाठक समझ लिये होंगे कि कामाध्वी जा द्वारा म मून पाठ का किया गया अब कितना अगम्य अप्रति अनुचित और भ्रांतिपूर्ण है । बिल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी ऐसा अस्पृश्य तथा धूणित वस्तु को देवती जती बारह प्रत धारिणी उत्कृष्ट धार्मिका अरुण पर गहर और उसे पना करतयार करे तथा रक्तापित दाह रोग की नाति के लिये ऐसी वस्तु का प्रयोग उचित मान लिया जावे य मव मायनाम अप्रात्यगिक पान्थविकता से दूर तथा कथोत्कल्पित जचनी हैं ।

(२) तथा भसए और कडए श । का पुत्तिग प्रयास भी प्राथम्य बनाया हुआ निग्रय यमणा का उन के लिये भगवान महावीर स्वामी ने मना लिया है (सोमिल ब्राह्मण तथा भगवान् महावीर स्वामी के सम्बन्ध से हमने इस बात को स्पष्ट पान किया है) एमो अरस्या म मर अमण भगवान् महावीर स्वयं भी इस ग्रहण नहा कर सकते थे क्योंकि कूष्माण्ड पात्र उन के लिये बनाया गया था ।

य खण्ड

महार





तृतीय खण्ड

उपसंहार



[illegible]

पिष्टान् धानि सं वनाय गव मिष्टान् भाजन के अथ म प्रयुज्य हुमा हे ।  
मास शब्द को 'पास्या करन हुए आचार्य यास्कि कहते हैं —

गाम मानन वा मानन वा मनोऽस्मिन् स्तोदति वा ।'

अथ—गाम कहा मानन कहा मानन कहा य सब एव ही अथ के प्रतिपादन पर्याय हैं और म उम भोजन के नाम हैं जो आगनुव माननीय महमान व न्य तयार किया जाता था और वह समस्तता वा मि भेरा घडा मान किया गया है ।

'मन ज्ञान दम धातु से मान गव निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ होता है बड़ आदमी के सम्मान का साधन ।

पुरातत्त्वशास्त्र विद्वानों ने आचार्य यास्क का मन्वर्थ ईसा पूर्व नवम शताब्दी निश्चय किया है । इसमें यह सिद्ध होता है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के वैदिक साहित्य में मान गव वनस्पतिनिष्पन्न खाद्य के अथ म प्रयुक्त हुआ था ।

इस के बाद धीरे धीरे मधुपर्क और पिष्टवस म प्राण्य मास का प्रयोग होने लगा । कोषापन गृह्यसूत्र में जो कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी की कृति मानी जाती है—यह आग्रह किया गया है कि मधुपर्क में प्राण्य मास अवश्य होना चाहिये यदि पशु मास न मिले तो पिष्टान्न का मांस तयार कर काम में लिया जाए ।

'आरण्यम वा भोजन ॥५२॥ न त्वेषामासीदर्थं इयात् ॥५३॥  
अमावसी पिष्टान्न सतिभ्यत ॥५४॥

अथ—(गी क उत्सर्जन कर देने पर अथ साम्य पशुओं के अभाव में) आरण्यपशु के मांस स अध्य किया जाय क्योंकि मांस बिना का अध्य होता ही नहीं । यदि आरण्य मास की प्राप्ति न कर सकें तो पिष्टान्न से उस (मांस का) तयार कर ।

उपनिषद् में भी मान तथा तामिष जल प्रयुक्त हुए दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु यहाँ सभी जगह म वनस्पति खाद्य पत्ताय का अथ प्रतिपादन किया गया है । उपनिषद् वाक्य बाण में लिखा है—

“मांसमुद्गोय ।” “यो मत्स्यमन्नमांसम् ।”

अर्थ—माग के गुण गाथा । जा भीतर का सार भाग है ।

उक्त उद्धरणों में भगवान् की प्रमाणित हो जाया है कि यदि प्राचीन साहित्य में अति पूरुष नाम में मान-प्रामाण्य आदि नाम वनस्पति आदि के अर्थ में प्रयुक्त होने पर और मान में पुरुष का प्रवृत्ति करने के समय में इन नामों का ध्यान प्रत्यक्ष होना चाहिए अन्य निरोहित हो गया और प्राचीन मान ही मान नाम का वाक्यान्वय बन गया ।

निष्ठ समय में जब कि माग तथा आमिष गन्ध ब्रह्म प्राण्यग माग  
वन चुब ये उम समय भा आमिष गन्ध बर्द अर्षों में प्रयुक्त होता  
था। एना में मिष ग्रह म शिष्ट गन्ध निम्ननिमित्त प्राचीन दत्ता स  
जात होता है।

“प्रायग्वक्ष्ये अमरस्यान्क जम्बीर खीरपुर यतः गेयमिन विद्युद्विद्येदिमानं दुष्मानं समूरं नाम अत्यष्टविषमामिषं वजयेन ।”

अथ त्रु 'गाष्टानीमहिष्य'दुग्धं वदु विनाग्न द्विजस्य श्रीना रमा  
भूमिलवर्णं तादृशप्राप्तव्यस्य वत्सलजन स्वार्थपक्षमन्त्रितमामि  
गण उक्त ॥

अथ—प्राणधारी के बिनी भी अंग का रूप समझे में भरा हुआ पानी जन्मीर फल बीजारा धन के अनिरिक्त विष्णु का निवेष्टि नहीं किया हुआ अन जन्म हुआ अन मनुर धाय और मान इन आठ धन्यों का समग्र आमिषगण कह्यता है। मन्तर से आमिष गण— गाय बकरी भन के रूप को छात्र धन जानवरों का रूप बामी अन आह्लाण से खरी का हुई जमीन जमान पर क शार म तपार किया आ नमक नामरात्र म रख हुए पांच गव्य छोट लड्डे में रण दुधा नल, आत्माय पकाया हुआ मोहन यह दूमर प्रकार का आमिषगण है।

उपयुक्त दानो आमिषवर्णों में आमिष का अन्वय अथवा ओषधियों में प्रयुक्त हुआ है। इसमें पाया जाता है कि यमनिष्ठ गत उपयुक्त दान सूत्रों के निम्नलिखित समय से पहले ही कृत्रिम माहिल्य में आमिष

का नाम अठा भोजन यह अथ भूग जा चुका था। यही कारण है कि उस वर्णार्थ का अमिय का नाम देर देर बजित बताया गया है। (भा० भो० मी० क० वि०)

(२) चायुर्वेद उन तथा बौद्ध आदि के दाचीन श्रमो में आभिय, मान मत्स्य, आसिषक आदि विवेचन हम द्वितीय खण्ड में विस्तृत कर आये हैं। तत्परगत धात्रे धीरे इन साँचों का प्रयोग प्राण्यगो

१ पञ्चमाग भगवन्मूत्र म द्वा तर्वास्त मूत्र पाठ के अनस्तनिपर अथ क समान ही आगराग दग्धनालिक आदि क चर्चमिन् मूत्र पाठो के भी अनस्तनिपर अथ है। अनाममो म आवे अथ चर्चमिन् गुणो के प्राण्यगों क अनिरिक्त निरामि अथ प्राचीन नारतीय साहित्य न सत्रमाण यन् देय जाने हैं ये गुण अटिन् अटिङ्ग आमिय कन्ध म छ मम मज्ज आदि हैं।

अदमागरी

१ अन्डि

गस्टन

अल्प

निरामिपाथ

बीज गुठने अक

म्यन

नैमिलीय अथ नास्त्र

पृ० ११८ मुख्य महिता

वदन्तारण्यापविषद

व० १

पण्यवणा मूत्र

उत्तराध्ययन १

पृ० ६

अन्डि

१ अरियक

१ विमम बीज न बना हो मा

अरिपत्र फल गुठनी वाक

वर आम आदि क

२ मान का कारण

१ आगर कृष्णि नाम्य वस्तु

२ आभिय

आमिय

आमिय

वनस्पतयगो तथा पक्षयानो आदि मे समान रूप से होन लगा । उस समय प्राण्यगो भीम हस्ते मनुष्या तथा शत्रियो आदि गिराफो गतिव्या का मरण अवश्य था । ये किरल यज्ञो मे पशु बली की प्रथा के कारण प्राण्यग मात ओ यणो मे बली से बनता था वह भी धर्मश्रद्धा से खाए बनता आ रहा था । उसावि जन भ्रमण एव न भ्रमणापानन गृहस्थ (घातक) इसना आहार क्यपि न करते थे । किन्तु जन तीयकट भगवान नमिनाथ ने राजा उपसेन के बही भोजनाथ दीध गय पशुओ को अभय दान दिलाया तथा भगवान महावीर स्वामी ने पशुओ व यज्ञो का घोर विरोध किन । यह सब कुछ होन पर भी मोक्षम बुद्ध भगवान महावीर स्वामी के समान हो हिसन यज्ञो का विरोध किया । किन्तु तप्यागत मोक्षम बुद्ध एव उनके बि बुद्धा मे प्राण्यग मरण मात आदि का भगण होन न्य गया था । ईसा की प्रथम

महाध प्रकरण  
धर्मरत्न करडक  
(बनमान मूरिहल)

धर्म विनय

हं० १  
प्रियाक १, ८

२ नवैय भिरदास परगाम  
३ आभिन पञ्जा—नवैय पञ्जा

४ जम्बीर फन् विजारा जला  
हुया जन मयुर धन्य  
गाय भग वररो ५ क्ष  
व मिजान अजदप । वागा  
वन रामक ज्ञान तिये  
पराया हुआ भोजन दयाणि ।

१ वीन  
२ गल्प

कटर

कटय  
कटय



धर्मात्मा के वाच्य भाग में जो गिष्ट से निष्पन्न भिद्यमान तथा फल मय के अर्थ में प्रयुक्त होता था वह धीरे धीरे धारा में आन लगा। ईसा की प्रथम शताब्दी में पूर्व निर्मित जनगणना तथा श्रमिकों में मजदूरी और पुद्गल गणने का प्रयोग प्राच्य मय के रूप में भी प्रयुक्त होने लगा।

(३) जनगणनों में भाग हुए विद्यालय में मूल पाठों का वास्तविक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक है कि जनगणनों की रचना का इतिहास भी जाना जाय ताकि स्पष्टाथ समझन में सुगमता प्राप्त हो।

५	कटय वादिया—कटय गाथा	३	दुसाहादक वस्तु	उत्तराध्ययन १
मछ	मत्स्य	१	कौटो बाली वन गाथा	आचार्य २ १ ५
		१	मत्स्यावृत्ति के बनाय हुए उडद की पाठा के पक्षान्त कोद्रव धाय के तदुक्त, शीदि के तदुक्त	क्षम कुतूहल
मछडिया	मादयति जनन इति मत्स्य । मत्स्यडिका		नया करव यात्रे धाय	कौटिलीय अर्थशास्त्र अ० २४ पृष्ठ ११७
मत्स	मास	अथ शक्रा—एक प्रकार की गवक्षर		पृष्ठ २४ भाषा ०
६		१	फलियों का गुण फल का गुण मेवो का गुण	वद्वारा रणभाषा निपद सुश्रुत संहिता

भयबान् महावीर स्वामी ने अपनी ५२ वर्ष की आयु में ईसा पूर्व १५७ वर्ष में नेपाल जान प्राण त्याग दिया।  
 पान गिदावों का सायबिक प्रचार करना आरम्भ किया और ईसा पूर्व ५२७ वर्ष में निर्बलि (वीर) पान तक लम्पार जो ३० वर्षों तक उभेगा दिया उस उभेगा को उनके मुख्य गिदवों—मगधरों ने गुरु में गुरुन किया और उन्हें डांगीयों—बारठ अथवा (गारवों) में समुद्रिन कर अन्तरी सिद्ध परम्परा में ईसा के स्व पञ्चन्याता धारू रत्ना । भयबान् महावीर स्वामी के बान् दुग दादगामी के आधार से पूरकित अनाथायों न समय समय पर आि दासों को रक्षा की वे आगम तथा प्रकरणों के नाम से प्रसिद्ध हुए । भयबान् महावीर स्वामी द्वारा उन्निष्ट डांगीयों अंग प्रसिद्ध सन् उसके आधार से रचे गये दांगन

२ गरिष्ठ साध पन्थों में प्रथम

नम्बर १ साध पन्थ जो नी  
 दासक पाटी आनि से वापा  
 जाना है उगमें केयर भयरा  
 सल पन्थ का रत्न निया  
 जाना है ।

अनकार्य मन्त्र कोन

७	मन्त्र	१ मन्त्र	रान करन दूना	१०६ १०१
		२ मन्त्र	गयन न	भार
		३ मन्त्र	सक करन मायन करना	गड प्राक० ६०

अपारव दोसकान न भयबान् दुग साध पन्थ म अनामगर्भरिनि तथा गाथाराग व निन मूच पाठों के उद्धरण देकर यह सिद्ध करने की है कि अन्त सा १ प्रपन्थ माग न १६ ये यही सब अन्य वास्तविकरण हैं । उन मूच पाठों के पूर्णतर मन्त्र य से यह बात स्पष्ट है ।

समूह अग्राह्य के नाम से बन्ना जात है । भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे उनमें से नवता भगवान् महावीर की जैनूगीम ही निर्वाण (मांग) का पा गये थे । जिस रात्रि का भगवान् महावीर ने निर्वाण पाया था उसी रात्रि का उनके प्रथम गणधर था इ भूतिगीम का बवल । ज्ञान हा जान से एवं मात्र पाचवें गणधर था सुवर्मा स्वामा उस समय भगवान् महावीर के चतुर्विंश सय (साथ साथी श्रावक-श्राविका) का तीस वं नता (मध नायक आचार्य) सरदाव का । जन श्रमण बाह्याभ्यतर परिग्रह के मन्त्रा त्यागा हान से उन्हें निग्रथ (निगूठ अथवा निगम) के नाम से सरासि किया जाता था । वे निग्रथवर्ग के पालन के निय अत्यावश्यक वृत्तिपथ उपकरणों के विनाय अतः पास अन्य कोई भी पण्य नहीं रखत थे तथा उन समय ब्रह्मा गणधर एवं द्वादशी (ग्यारह वग तथा चौदह पूर्वों) का जाता होताथ जन श्रमण सय विद्यमान होने से भगवान् महावीर की शाली की निखन की आवश्यकता नहीं समझी गया । भगवान् महावीर के बाद १३० वर्षों तक श्री भद्रबाहु स्वामी तक द्वादशी का निग्रथ श्रमणान ब्रह्मिण कठस्य या रम्य इमलिये उस ज्ञान से बन्नी नहीं आयी । थी स्थान आदि आचार्य भद्रबाहु स्वामी के समजातीन तथा उनके बाद उनके पट्टपर आचार्य विमुक्त हुए वे ग्यारह अंगो तथा दस पूर्वों के अथ सन्नि नाता एवं चार पूर्वों का मूल सूत्र पाठ से जानत थे । उस समय जनक अथ निग्रथ भी इतने ज्ञान के जाता थे । मह समय ईसा पूर्व चौथा शताब्दी ठहरता है । आय गुहस्ती, आय महागिरि महाराजा सम्प्रति ने समय हुए (ई० पू० २००) । फिर ईसा पूर्व दूसरा शताब्दी (ई० पू० १७४) में जन सघाट बलिगाधिपति सारवल ने अपनी मंग विजय के बाद अपनी राजधानी में एक धर्म मम्मलन किया । उस समय निग्रथ श्रमण बहुत सम्प्रति में पया । वहीं उन सय न जनमया का वाचना की और उन्हें व्यग्रस्थित किया ।' गता हाया गुफा के गिरालव से जान जाता है । इसी प्रकार बीच बीच में एक दो गताब्दियों के बाद निग्रथ श्रमण विमान जिमा स्थान पर एकत्रित

हाकर जेनागमा का घरदार निष्कर जीवन करके उन का गुरुशिष्य रखने  
 लगे। ईसा का प्रथम गता म ४ रक्षामा हुए तब तक ग्याह अग  
 नवा पुर्षों का ज्ञान ब्रह्म सन्निहित था। इस बाद काल व स्वभाव से  
 बुद्धि मन्त्र जा व बारन म निद्र व समय आगम पाठ भूलन लग।  
 मगवान मन्त्राचार स्वामा व शासन पाठ पर था मन्त्रलिखाय हुए उन  
 समय धारह वर्षीय राज ११६६ व व रण व ११६६ को अग उपांग भी  
 पूरा कर ले पाठ म ०। १। म ०। १। पर मयुरा म मन्त्रलिखाय की  
 भाष्यता म जन धर्मों का विर तर्क बहसम्पन्न हुआ। उक्त समय  
 निद्र व धर्मन तथ न मन्त्रित हाव विर भाषु का विरा ग्राह्य का  
 विनता पाठ कठस्थ था वा व मन्त्र करके जनागमा की पुन मन्त्रित  
 किया गया। इम व इस माध्या वाचना ब्रह्म है। यह समय लगभग  
 ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी का ठहरता है। इस प्रकार वाच-वीच म  
 एर १। शताब्दी के बाद निद्र व धर्मन अपना सम्मलन करके जनागमा  
 क अगन ब्रह्म ज्ञान का पुनर्जीवन करके उह व्यवस्थित रखत भाष।  
 अगन म का क स्वरमा म जब स्मरणार्थि म अरिध बनी आने लगी  
 और मूल पाठ विस्मरण हाउ गय। तब ईसा की पाचवीं शताब्दी में  
 (मगवान मन्त्राचार स्वामा व निवाण के ९८० वर्ष बाद) ब्रह्मा नगरी  
 म गमना निद्र व गंगा का एक ब्रह्मसम्मलन हुआ। इन सम्मलन क  
 ज्ञान जेनागमा द्वाविगणि क्षमाधर्मन थे। यह उक्त समय क पुन  
 प्रपात और मुष्मावाय व। सम्मलन में विर-विर सार का जनागमा क  
 वा-वा पाठ कठस्थ था वे उक्त वाचन हुआ। वाचना क पत्रन व  
 गालूम हुआ कि चीन पूर्व पूर्व मूल आ चुके हैं। बाक क ग्याह वी  
 के मा कुछ भाग विस्मरण हो चके हैं। इस निद्र व धर्मन  
 व गमन विरुद्ध ममत्ता उपस्थित थी। यदि इस सन बच हुए इस  
 कठस्थ आगम ज्ञान की विविध न लिया गया ता काल्पनिक नैराश  
 भूत जात म गमवान् मन्त्राचार की दादगाता ब्रह्मा का पत्र क  
 हो जामना और यन्त्रि विरा जाता है ता इस काम

का स्वयं निष्पन्न करना होगा । यदि ऐसा ही आवश्यक है तो श्री निग्रय-  
धर्मणमथ को समय भालन के निमित्त अपन उपकरणों में लेखनी, स्थाही,  
ताडपत्र इत्यादि की वृद्धि करनी पड़गी । अतः मद्रव्य, धन, काल, भाव  
या विचार कच्चे जिससे अहित या परिहार तथा हिन या लाभ हो उस  
उत्सर्ग-अपवाग रूप स्थाद्वान की दृष्टि का लक्ष्य में रखन हुए उस समय  
एकत्रित हुए निग्रयधर्मणमथ में सवतम्मति से इस कठस्य पान को  
लिपिवद्ध करके पुस्तकाङ्कन करने का निणय किया । इन निणय के  
अनुसार श्री देवर्द्धिगणि समाधर्मण का अध्ययन म जो-जो आगम पाठ  
जिस जिस निग्रय धर्मण को याग ध उन मय को बिना किसी फर फार के  
ताडपत्रों पर लिख कर लिपिवद्ध किया । भगवान महाशरीर के समय से  
अब इस समय तक जिसने आगमों प्रमाणों का रचना हुई थी, फिर वे  
चाहें अगप्रविष्ट ध या अगप्रविष्ट ध उन का जितना जितना भाग याग था  
सब संग्रहित कर लिया गया । अथवा दगा पूरा छोड़ी सताव्ना से लेकर  
ईसा की पाचवी सताव्नी तक के जन माहिस्य को लिपिवद्ध करके लिख  
लिया गया । तत्पश्चात् इन आगम माहिस्य पर निर्युक्ति बूनि भाष्य  
टीकाएँ आदि लिखे गये । तथा अनकवित्र नवीन माहिस्य की रचना भी  
हानों आ रही है । हमसे यह स्पष्ट है कि जनागमों में जो कि इस समय  
विद्यमान हैं उन की मूल भाषा जसी कि भगवान महाशरीर स्वामी ने  
अपन श्रीमुग से दिव्य ज्योति द्वारा अपनी दसता (उपदेश) में बही थी  
वही भाषा बिना किसी फर फार के सुरक्षित है ।

(४) इन जनागमों पर टीकाएँ आदि लिखने वाले टीकाकार समस्त  
विद्वान थे, जिन सिद्धांतों तथा आचारों के जानकार एवं प्रतिपालक थे ।  
उनके रोम रोम में जनधर्म का अनुराग भी था । इसा होते हुए भी वे छपस्य  
ध और इन आगमों पर टीकाओं की रचनासमय तक तो इन विवादास्पद  
घटनों के प्राचीन अथ प्रायः भूते जा चुके थे तथा इनके नवीन अथ प्राण्यगों  
के रूप में प्रचार पा चुके थे । इसलिये सब काशकारों ने भी अपन नवीन  
शब्द कोशों में इन गमों के अथ को प्राण्यग रूप में लिखा । यह बात

प्राग्वहिकों से छिपी नहीं है। ऐसा हालत में इन विद्वान्स्वरूप मूल-  
पाठा का अर्थ व मन में होना स्वाभाविक था। जिन्हें तो प्राचीन गुरु  
परम्परा द्वारा दिये ज्ञान वाक्य अर्थ था व ता इन गुरुओं का अर्थ  
वस्तुनिष्ठतः तथा पञ्चांगान्ति द्वारा पण्य करते थे और जो उन प्राचीन  
अर्थों का मूल पदार्थ और उस समय के प्रचलित अर्थ करने हाथ थे इन  
गुरुों का अर्थ प्राग्वहिकों का समझने लगे हैं। ता इस में कोई आश्चर्य  
का बाध नहीं है। यदि इन गुरुों आचार्य अपनी लक्ष्यस्थायस्था के  
कारण प्राचीन समय से दिये ज्ञान वाक्य अर्थों के अर्थ प्राग्वहिक  
अर्थ समझने लगें हैं। ता मा जय व जन आचार्य विचारों के साथ मूलना  
करते तो उन्हें इस बात का विस्मय हुए बिना नहीं रहता होगा  
कि नवकाटिक अहिंसा के प्रतिपादन तथा उद्देश्यक निगूढ तत्पुत्र  
(धर्मन भगवान् महावार) तथा निष्कल धर्मों के आचार सम्बन्धी मूल  
पाठा में तब सामान्यतः व अर्थों के व्यवहार का जाना था ?

जनाचार्यों ने गुरु में भी अर्थ को अतिरिक्त गहरा किया है। इससे  
मूल की मात्रा का ज्ञान तो पता चलता है कि जन मान्यता के अनुसार  
तीर्थंकर तो वेद अर्थ का उद्देश्य न्त हैं। गुरु गुरु के होन हैं।  
अर्थात् मूलमूल अर्थ है न कि गुरु। अहिंसा में तो मूलमूल गुरु है उस  
के साथ उमर अर्थ का भीमाग्राहनी है। इसी जनधर्म के अनुसार  
मूलमूल अर्थ है धर्म ता उमर के साथ आता है। यही कारण है कि मूलों के  
धर्म का उद्देश्य महत्व गुरु जिनना उनके अर्थों का है। इसी लिए  
जनाचार्यों ने गुरु का उद्देश्य मूल नहीं किया जिनका कि अर्थों को दिया  
और फलस्वरूप गुरु का छात्र कर व तापयसि का भार शायद बहुत से  
समय हुए। गुरु का मूल व प्रसिद्ध अर्थ करना 'मारा' है एव स  
अतिरिक्त अर्थ करना विभागा है, तथा यात्रा अर्थ का दना  
वर्तित है।

आचार्य अपना भार से मूलों की व्याख्या करते हैं, किन्तु उमर व्याख्या  
का तीर्थंकर गुरुों का निर्मा भी जाना व विरोध नहीं होना चाहिये।

तीर्थकर देव की आज्ञा के विरोध में अपनी आज्ञा देने का अधिकार आचार्य को नहीं है। क्योंकि तीर्थकर और आचार्य की आज्ञा में घलादन की दृष्टि से तीर्थकर देव का आज्ञा ही सर्ववर्ती मानी जानी है आचार्य की नहीं। अतएव तीर्थकर देव की आज्ञा का अवज्ञा करने वाला व्यक्ति जिनके अथर्व वेदांग में दूषित माना गया है। जिस प्रकार श्रुति और स्मृति में विरोध होने पर श्रुति ही बलवान मानी जाती है, उसी प्रकार तीर्थकर की आज्ञा आचार्य की आज्ञा से सर्ववर्ती है।

यही कारण है कि प्रथमांग आचाराण के टीकाकार श्री श्रीलंकाचार्य तथा द्वितीयान्तिक आगम के टीकाकार श्री हरिमद्रसूरि ने मूल पाठों में आने वाले इन विवादास्पद शब्दों का अर्थ आगम के मूल भूत सिद्धांतों के अनुकूल करने के लिये अपनी बुद्धि का टीका टीक उपयोग करने में कोई कसर नहीं छोड़ा रखा। पृथ्वी पानी आदि छ काय जीवों की सेवा पालने वाले कीटिया की रक्षा के लिये बड़की सुन्नी का आहार करने वाले तथा अपने मृत्यु तीर्थकर दाँतों के सिद्धांत को पालन करने के उद्देश्य से चौथ पाँचवी एरु हा समय में पानी में पीते जाने पर भी इससे हुनते अपने प्राणा का आह्वान देने वाले जन निग्रथ अनिवाय मर्यादा में भी मांस मछली आदि का भक्षण के एमी बात उन के गले भी न उतरती। तथा जिस प्रकार इन सूत्रों के विवादास्पद भागों को आजकल के कुछ विद्वान दासक अथवा निवारणीय मानते हैं उन टीकाकारों ने इन आधुनिक विद्वानों के समान धारणा भी नहीं की। उन्होंने अपनी बुद्धि को कसरर मूल सिद्धान्त के हाद के पितृता समीप से समीप आया जा सना उनमा जान का प्रयत्न किया। किन्तु उन्होंने किसी भी स्थान पर मान मछली आदि अभक्ष्य पदार्थों को खाने का अर्थ ता किया ही नहीं।

प्रथमांग भगवतीसूत्र के टीकाकार श्री अभयदेव सूरिन तो इसमें आये हुए विवादास्पद सूत्र पाठ का स्पष्टार्थ वनस्पति परव ही स्वीकार किया है। अब प्राचीन टीकाकारा पूर्णिकारों के मतानुसार भी निग्रथ भक्षण मांस भक्षण अथवा मांस मिना करते थे यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

अतः भगवनीमूत्र के अन्तर्गत आचर्य्य दशवर्गाधिक, एवं मूत्र-  
प्रवाप्ति आदि अथ अनागमा य आन वाके ऐसे विवाङ्मय्य दशवर्गों का अर्थ  
भी वनस्पतिपरक तथा पन्था न जानि हा निग्रय आचार विचारों के साथ  
प्राचीन वेद तथा प्राचीन जनादि ग्रन्थों के अनुसार सम्यक् बछा है किन्तु  
मात्परक सबका असंगत है। यदि किन्हीं आधुनिक विद्वान की यह धारणा  
है कि इन मूत्रों की रचना के समय रचनाकार की वनस्पतिपरक तथा  
मात्परक दाना हो अथ अभिप्रेत थे तो उनका यह धारणा उपयुक्त उदा-  
हरणों से सबका असंगत ठहरता है। दूसरी बात यह है कि कदाभी किन्हीं  
श्रमण निग्रय न माताहार ग्रहण किया होता तो उसका अर्थ उनका  
जनन साहित्य में अवश्य पाया जाता किन्तु हृष का विषय है कि किन्हीं  
जननिग्रयश्रमण न माताभक्षण किया हा अथवा मास निग्रय इत्यादि  
उसका नाम तक किसी भी प्राचीन भारतीय साहित्य में नहीं मिलता।

(५) इसमें विषयन में यह बात ध्यान देना है कि भगवती,  
भगवता मूत्रप्रवाप्ति आचर्य्य आदि अथ आनार्थक दशवर्गों का अर्थ  
इन विवाङ्मय्य ग्रन्थों का प्रमाण वनस्पतिपरक तथा मात्परक अर्थ के  
अथ में होता था उनका प्राचीन है। वह समय इस समय के अर्थ  
स्वामी का र्था पूर्व छा गतात्मा का बछा है इन सब स्पष्ट है कि  
यन्त्री में वेदविगण समाश्रमण के मतमें है इन वनस्पतिपरक का  
सुक्तिन कर विपिबद्ध किया गया था वह धारणा अथवा अर्थ  
की धारणा का बिना बिना पर फार के सङ्गत है। अतः यह धारणा  
जना के पास सुरक्षित है।

अतः मूत्र विद्वाना का चाट्य्य कि इन मूत्रों का अर्थ  
निग्रय आचार विचार तथा भगवान् अथ अनागमा के अर्थ के अर्थ  
अथ प्रचलित थे उही के अनुकूल अथ अथ अनागमा के अर्थ  
अनागता का परिचय न द।

(६) यदि निग्रयपरम्परा के अर्थ अथ अनागमा के अर्थ  
होता अथवा अनागमा में मछने अथ अथ अनागमा के अर्थ



होता तो अथ धर्मावलम्बियों के साहित्य में जनधर्म के प्रतिस्पर्धी रूप में  
जना पर माताहार करने का आग्रह अवश्य पाया जाता। परन्तु यह बड़े  
गौरव का विषय है कि जनतर साहित्य में जनो पर इस आग्रह का मर्यादा  
भ्रमाव है। मरे एक मित्र जो एक लघुप्रतिष्ठ विद्वान हैं लम्बव, यका  
तथा धर्मोपनिषद् हैं उन्होंने इस विषय के लिये यह तक किया— 'समय  
हो मरता है कि जन साहित्य जनतर विद्वानों के हाथ में न जा पाया हो  
इसलिए हा सस्ता है कि वे ऐसा आग्रह जो पर न कर पाय हों' उनकी  
यह कला कोई व्यक्तिगत प्रज्ञा नहीं होगी क्योंकि यह कभी समय नहीं  
हो सस्ता कि जन साहित्य जनतर विद्वानों के हाथ में न गया हो। यदि  
बाकी दर के लिये ऐसा मान भी किया जाय तो भी धार्मिक, पौराणिक जैन  
तथा बौद्ध साहित्य का अवलम्बन करने से पता चलता है कि अनेक निग्रय  
धर्मण जनधर्म का समाग कर अथ धर्म सम्प्रदायों में जा मिले। अनेकों न  
निग्रय धर्मण की धर्मों का त्याग कर अथ नवीन सम्प्रदायों की स्थापना  
भी की। जब वे जन धर्मोपनिषद् के तब से हों जनधर्म का अभ्यास तो  
अवश्य ही किया होगा। इसका यह मतलब हुआ कि वे जनधर्म तथा  
निग्रय धर्मों के विचारों से पूर्णरूपेण परिचित थे तथा स्पष्ट सिद्ध होता है।  
यदि जनधर्मों तथा जन आचार विचारों में विभिन्न मात्र भी भास  
मछली आदि अवश्यमरण का धर्म जयवा प्रचलन होता तो वे जनधर्म  
के प्रतिष्ठा रूप में जनो पर अवश्य आग्रह करते पाये जाते।

(७) निग्रय (जन) धर्मों का आचार जनता का भक्षण या बर्षादि  
जन मुनि आहार आदि सदा गुरुओं के वहाँ से हा लभ्ये वे एक लेते हैं।  
यदि वे कदाचित् अनिवार्य अवस्था में भी प्राण्य मांस मत्स्यादि का  
भक्षण करते तो जनतर साहित्य में जनो पर माताहार करने का आग्रह  
अवश्य पाया जाता। ऐसा न होना हो यह सिद्ध करना है कि निग्रय  
आचार विचार से प्राण्य मांस आदि भक्षण का विधिमात्र भी अवकाश  
नहीं।

(८) गौतम बुद्ध जमाणी गोपालक य तीनों भगवान महावीर स्वामी

क ममकाजीन के तथा ये मनो पश्य निराधरपरम म दानित हुन और  
 क्यों तब निराध आचारों का पालन आचारों का पालन । बन्धु । इस परम्परा  
 का पालन कर जब उन्हीं जान अनधीन पथों का स्थापना को उब  
 म। उन्होंने जनपथ क प्रतिष्ठाओं के रूप में जन मिट्टानों तथा आचारों का  
 धार विराज किया । यद्यपि उन लोगों में १ बुद्धन क शास्त्रिय क प्रतिष्ठित  
 विद्या पथ का शास्त्रिय पालन नहा है तथापि बौद्ध साहित्य का दर्शन  
 मध्यम रूप में मध्यम २ वि विद्यापथ गौतम बुद्ध न उब जाने पथ की  
 स्थापना का उम समय अपने पथ क प्रचार तथा विचार क विचार जन  
 पथ क अनध्यायन पालन आदि की कदा आकाशता की । पाकर  
 मनि गौतम बुद्ध तथा उनर वि विद्यापथ मीम मछला आदि मृन्मांस  
 का पालन मध्यम वि विद्यापथ जनपथ कात ध और के संग मृन्मांसमण  
 म दान भा न्ना मान ध । उनके म समय पथों क भरण करने पर  
 उनके समकालीन निराधिमित्रा ममायन्त्रियों न उन को लगी आचार  
 प्रणाली का कड़ी आकाशता का म्भ आगम मी विद्य । उन आलोचकों  
 म जन भी एक ध । बुद्ध न अपने इस विविध आचार का दर्शन क विद्य  
 तथा अपने पथप्रचार क विद्य अपने आकाशकों के विरुद्ध भाव प्रचार म  
 प्रचार दिया । इतिहासम म्भ मान स्पष्ट है कि जन तथा बौद्ध उम  
 समय परस्पर प्रतिस्पर्द्धी क रत म ध । ऐसा होने हुए भा बौद्ध साहित्य म  
 जनों का मांसाहार करने का आग्रह म पाया जाना हमारे इस मन्त्र की  
 पुष्टि करता है कि निराध ( जन ) परम्परा म क्वापि प्राथम्य मग मछला  
 आदि अमध्य पथों क धान का प्रचलन नगा था ।

( ९ ) मान इतना ही नहा परन्तु पाक्यमनि गौतम बुद्ध न अपना  
 निराध अवस्था की सपन्नर्था का वजन करते हुए मध्यम मीम मन्त्रिय  
 आदि मन्त्रन करने का नियम दिया ३ । ऐसा हुन से निराध अवस्था का  
 मानागरे न करने का स्पष्ट निर्देश पाया जाना भी इही बात की पुष्टि  
 करता है कि निराध ( जन ) परम्पराओं म उम अमध्य पथों क भरण  
 का क्वापि प्रचलन नहीं था ।

(१०) जन अथवा जनैतर प्राचीन साहित्य को देखने से यह भी पता लगता है कि सत्ता से जा सम्प्रदायों के अनेक समय विद्वानों ने अपने पहले सम्प्रदाय का त्याग कर जनधर्म को स्वीकार किया। जिनमें निगण्ड नाय बुत (श्रमण भगवान महावीर) व मुख्यशिष्य-गणधर इन्द्रभूति आदि ग्यारह शास्त्रज्ञ पंडितों ने जो चौदह विद्याओं के नाता थे अपने हजारों शिष्यों के साथ निग्रय धर्मण व पांच महाव्रतों को स्वीकार कर जन मुनि का दाक्षा ग्रहण की। य सब जनधर्म स्वीकार करने से पहले यों भी स्वयं पशुशलि करने थे, दूसरा से मरवाते थे तथा इस प्रथा का सर्वत्र प्रचार भी करते थे जब यज्ञाद्वारा तयार किए हुए प्राण्यग मांस को खाना अपना परमधर्म समझते थे। गन्धर्व हरिभद्र आदि अनेक समय विद्वानों ने भी ऐसा ही किया। जनधर्म का स्वीकार करने के बाद ये सब महान् तपस्वी परमसमर्थ तथा नवकाटिक अहिंसा के प्रतिपादक व और समय गीताध जनाचार्यों के रूप में ख्यात हुए। यदि जनधर्म के आचार विचारों में किंचिन्मात्र भी सामिपाद्वार की आना अथवा प्रचार होता तो ये स्वयं परम अहिंसक वृत्ति न बन पाते। मात्र इतना ही नहीं बल्कि यह जनो पर यह आक्षेप भी अवश्य करते कि आप जन लोग स्वयं का सामिपाद्वार करते हैं फिर भी अन्य सामिपभोजी सम्प्रदायों की आलोचना क्यों करते हैं? किन्तु परम गौरव का विषय है कि जनो पर ऐसा एक भी आक्षेप जैन अथवा जनतर साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। इस से यह स्पष्ट होता है कि निग्रय (जन) धर्म में सामिपाद्वार की किंचिन्मात्र भी अवकाश नहीं है।

(११) जहाँ जहाँ भी जनधर्म का अधिक प्रभाव रहा वहाँ के अन्य धर्मविलम्बी भी प्राण्यग मांसादि अमह्य पदार्थों का इस्तेमाल (उपयोग) करने से दूर रहते आ रहे हैं। मात्र इतना ही नहीं परन्तु आज से हजारों सालों से यह पहले जब बौद्ध लोग गुजरात प्रदेश में आये तब जनधर्म के आचार तथा विचार के प्रभाव से प्रभावित हो कर उन्हें भी मत्स्य मांसादि के प्राण्यग मांसपरक अर्थों को वनस्पतिपरक

अप करन के लिए बाध्य होना पड़ा तथा बौद्ध धर्मों में बौद्ध भिक्षुओं को प्राण्यय मायादि अमन्य पदार्थों के भक्षण के नियम निषेध करना पड़ा । इससे यह स्पष्ट है कि भूतकाय में लेकर आज तक जनों में मायाहार का कोई प्रचार अथवा प्रभाव का अवकाश नहीं रहा । मैं मर जाने भगवान महावीर तथा निग्रह श्रमणों के कट्टर निरामिषाचार होने का स्पष्ट प्रमाण है ।

( १२ ) यही कारण है कि मायाहार प्रयोग तथा मायाहार दोनों में रहने वाले जन धर्मावलम्बी गन्धर्व भी मनुष्य का मानि आज तक कट्टर निरामिषाचारी हैं । मात्र इतना ही नहीं जन धर्म का उस अर्थ में भूल चकन वाली 'मरान' आदि जातियों का आज भी कट्टर निरामिषाचारी होना उन पर जनधर्म के आधार तथा विचार का गम्भीर छाप का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

( १३ ) भारतवर्ष में जनधर्म की मौलिक वांग्य ग्रामवाण सङ्केतवाच्य पारमार्थिक धामार्थ पञ्चावली अति प्रमुख जन जातियों का निर्माण राजपूतानि मायादि जातियों में मनुष्य । जब मैं इन महानुभाव जनधर्म का स्वाकार किताबीर से निग्रह (जन) श्रमणापागव (आवक) बन तब मैं आज धर्म कट्टर निरामिषाचारी हैं । यदि जन आधार विचार में मायाहार की थोड़ी सी भा छू जाता फिर वह चाहे उत्तम न होनी अथवा अपवाद में तो ये उपयुक्त श्रमणापागव जन जातिवा बन्दादि आज कट्टर निरामिषाचारी न होती । इस के विपरीत बौद्धों के समान मैं भी सब सामिषाचारी हूँ । हम सब खुने हैं कि बुद्धधर्म का स्वीकार करने वाले निरामिषाचारी तापस भी मायाहार बन गए तथा जनधर्म का स्वाकार करने वाले मायाहारों का भी कट्टर निरामिषाचारी बन गए । इस में भी स्पष्ट सिद्ध है कि निग्रह-परम्परा में मायाहार का कभी भी प्रचलन नहीं था और न है ।

( १४ ) जन मीथकर भगवान मन्वीर स्वामी तथा गार्थव मुनि तथापन गौतम बुद्ध समकालीन में और आत्ममाचन के एक ही निग्रह

पय के गपयिष्यथ । महात्मा बुद्ध इस पय से नन्क गए और भगवान् महावीर से पय का पार कर सकूँ हुए । भगवान् महावीर अपनी आत्मा का गुद पवित्र करके कममत्र के मवषा रत्निहाकर मोन प्राप्त कर गये के लिए अमर हो गये तथा महात्मा बुद्ध अपनी वित्त शक्ति को मवषा गुहा पर गया के लिए विलुप्त हो गये । इन दोनों के अपने अपने आचार विचारों के अनुसार ही निग्रय (जन) परम्परा बट्टर निरामिपाहारी है और बौद्ध-परम्परा माम-मच्छकी जादि मवभशी है ।

( १ ) निग्रय परम्परा तथा मप्राण्यम मास म नी अण्ड मंदिरा आदि अभक्ष्यमण का विरोध करवा आई है यहाँ कारण है कि जन धर्म अथ मामाहारी परम्पराओं के ममान मामाहारी नेमो म म फल सता । भारतवर्ष म हा इसका प्राप्तिर्भाव हो कर भारत म सीमित रहा ।

( १६ ) अतः (क) आध्यात्मिक के इतिहास के अम्यामा से यह बात बताने छिदा गही रह सकती कि आध्यात्मिक आदि प्राचीन जन आगमों के रचनाकाल के समय मांस आदि पशुओं का अथ वनस्पतिपरक तथा पक्षियों आदि उत्तम मांस पदार्थों का विषय आता था । इसलिये इन आगमों म जाय हुए मामादि स नी का अथ प्राण्यम तृतीय धातु मांस का समस्तता सवषा अनुचित है । (ग) जन आचार विचार के अनुसार भी इन सत्ता का प्राण्यम मासपरक अथ मवषा प्रतिकूल है । (ग) जन परम्परा के आचार मवधी इतिहास म भी यही बात सिद्ध होती है कि भगवान् महावीर स्वामी से पहले के जन धारक जो कि इनके पूर्वकावर्ती भगवान् पादवनाथ आदि के अनुयायी थे वे भी मामाहारी नहीं थे । उन पार्श्वपत्य धारक का अवश्य रूप सरक जानिवा आज भी बंगाल जम मामाहारी नेम म मद मास और जन का बट्टर निरामिपाहारी होना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । तथा भगवान् महावीर के बाल निमिा हान वाला जोमगाल पारवाक अप्रवाक सडलवाल श्रीमाल आदि जन जानिवा का बट्टर निरामिपभाजी होना भी हमारी इस धारणा की पुष्ट करता है । जिस प्रकार जन धारक निरा

मियाहटा है उगा प्रचार निग्रय श्रमण (जन्मुनि) भी तबवा एव  
सब निरामिपमात्रा थे जोर हैं ।

एसा हान हुण की अष्टागज बोगाम्बी का यह लिखना नि उता।  
न (जनों ने) मागाहार का ममधन दगा (बीडा), वे डग म किया  
हाना क्योंकि पूरवानान तस्त्रिया के ममान जगत व कूल-कर्मों पर  
निर्वाह न करके लोगों का न दुई मिना पर निभर रनी ये और उग  
पयव निर्वाण मलय निदा मिलना अगभव था । अष्टागज साग यग म  
शिरा प्राणियों का सब करके उनका मास आग-नाम व लाग। में बां  
रुध । गाव व लण दयनाका का प्राणियों की बां बाड़ा कर उनका  
मांभाते थे । इस व अतिरिक्त बनाई लाग टाव बीराहें पर गाव का  
मार-र उगा मांम बवन रहन थ । एसी स्थिति म पचवाल की मिना  
पर धिर रनवाल श्रमणों का माग रहित मिना मिलना कत गभव  
हामक था ।

उनकी यह पाण्डा सपता म बीसी दूर है । क्योंकि धमण  
भगवान महीर निग्रय परम्परा के बीबीसवें तीर्थकर थ उन में पड़क  
तेईगवें ताक भगवान पाचनाथ तथा चाईमवें तीर्थकर भगवान  
अरिष्ट नमि (नमिनाथ) इत्यादि तेईस तीर्थकर ह। उनके थे जिहों  
सुख भांमा । प्रचार कर जन आधार विचारों के वालन करन बाळ  
समाज का स्थान की थी जा अनुविध मय व नाम से प्रसिद्ध है । इनमें  
सापु साध्वी श्रम-श्राविकाओं का समावन होता है । ये जन धारक  
श्राविकायें श्रमण पवानु महावीर के समय म इनके दागा भन तथा  
केवलान प्राप्त व धम प्रचार प्रारम्भ करन में पड़न से निग्रमान  
ये मराज आनि जाकि कन्टर निरामिपमात्रा थे । इन के अतिरिक्त  
अप निरामिपमात्रा मयासी श्रमणों के उपासक पक्षम भा  
निरामिपमाहारी अवश्य समान हाग । भगवान महावीर व माता  
पिता तथा मामा मन्ना सेटक का परिवार तथा अप मग  
अम्ब-भी निग्रय श्रमण उपासक थे अर्थात् जन धर्मानुयायी थे ।

श्रमण भगवान् महावीर के धर्मप्रचार में भी लाखों की संख्या में गृहस्थों ने जन धर्म स्वीकार कर लिया था और वे बारह व्रतधारी श्रमणोंवासक बन चुके थे। जिस में उस समय में निराश्रित भोजी भी सर्वत्र विद्यमान थे।

एसी अवस्था में भिक्षा पर निर्भर रहने वाले जन निषध श्रमणों का मास रहित भिक्षा भिक्षा समयव मागना नहीं तब चचित है ? पाठक स्वयंसाच सचन हैं।

व्यक्ति का कारणों में गूँथ खाता है। अज्ञानवश अथवा राग द्वेषवश। सो का साम्राज्य की उपयुक्त धारणा सत्य से कौगा दूर होने के कारण इन का कारणों में से किसी एक कारण का गिवार अवश्य हुई है। अधिक क्या लिख।

(१७) मनुष्य का उगने विचारों का साथ गहरा सम्बन्ध है। विचारों के अनुसार ही आचार होता है। जो यह मानता है कि आत्मा महा है परलोक महा है परमात्मा नहीं है उगका आचार उप भोग-प्रथा रहता है। जो यह मानता है कि आत्मा है परलोक है आत्मा अपने किय हुए शुभाशुभ कर्मों के अनगार सुख-दुःख आदि का भोगता है, उसका आचार भोगप्रधान न होकर इसके विपरीत जागमय होता है। अतः विचारों का मनुष्य के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ है। इसलिए किन्हीं के आचार विचार को जान बिना उस के विषय सम्पन्न निगम नहीं किया जा सकता। महात्मा बुद्ध मृतमूर्ति से नहीं मानते थे किन्तु निगठ नायपुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) सब प्रकार के प्राण्यग मास को जन्म जीवों का पुत्र मानते थे। फिर जब हम श्रमण भगवान् महावीर के जीवन पर दृष्टिपात करत तो ज्ञात होता है कि वे दीना तेन से पहले गृहस्थाश्रम में हो गि-बिहार का सब प्रकार में त्यागी हो चुके थे और निषध श्रमण की आत्मा लेने के बाद जब वे गहन मवर्णी हो चुके थे तब उन्होंने मोक्ष कर्म का सपना माग कर लिया था। उस समय उन्हें अपने शरीर र विविधात्र भी मोह नहीं

था। वे ज्ञान केवलज्ञान द्वारा यह भी जानते थे कि अभी उनकी आयु मोक्ष वर और दण्ड है। वे यह भी अवश्य जानते होंगे कि पितृ-वर रक्तपित्त आदि रोगों के क्षमन करने के लिये वनस्पति से निम्नान्न निक्षेप और ताम्र-शोषविषा भी सुम्भ प्राप्य हैं। उनके उम्र समय गर्वों का मरणा म निरामिषाहारी गृहस्थ थापक अनुयायी तथा उपामक विद्यमान थे। जब छत्रमस्थ निम्नय क्षमण भी मामाहार का सवया थागी होता है तब तीर्थक भगवान का आचार ना उन निम्न धी से भी बहुत उच्छ्रंखल। ऐसी अवस्था में ऐसा पाप-मूलक मासाहार व कमे रहन कर सकत थे? कहना हाया कि प्रम महावीर पर मासाहार का शोभाकरण करना श्री पर धूषन व ममान है। फिर भी यदि कोई कह कि रोग के क्षमन के लिये भगवान न मुर्गे का मास खाया क्योंकि विवासास्थ मूत्र पाठ के अथ में भी ऐसा प्रताप्त हाया है तो यह स्वीकृति उनकी युक्ति सफल नहीं है।

किसी भी बात का निश्चय करने से पहले इस विषय में लागू पड़ने वाले समीग तथा आम पास के समीगों का विचार करके सत्य निश्चय करना पुन विद्वानों का साधु वतम्भ है। हम इस निर्वच में अनेक स्थलों पर इस बात के अनेक प्रमाण देने आ रहे हैं कि भगवान महावीर न प्राणि हिमा तथा मासाहार का उग्र विरोध किया था। एम महान कर्त्तव्य को अपने सिद्धान्त की कर्त्तर न हा यह कैसे माना जा सकता है?

(१८) जन सिद्धान्त के अनुसार (१) भगवान महावीर का वय्य ऋषभनाथ सहनन था। (२) उन्होंने छत्रस्यावस्था में घोरतिघोर उपग तथा परीपट मह कर भी अपन निम्नय क्षमण व आचारों का रहना पूरक पालन किया था। (३) उन्होंने मामाहार को नरकगति में ल जान वाला बतलाया है। (४) मासाहारी को बसाई (पातक द्विगक) कहा है जो कि सवया साधक है। बसाई क्षत्र-कषायी का प्रावृत्त पर्यायवाची होता है। इसका आग्य यह हुआ कि भगवान महावीर के सिद्धान्तनुसार मासाहार उत्कृष्ट कषायवान व्यक्ति ही कर सकता है।



श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ता वपाय अनादि अकारण दागे रहित भवन गवर्णी ये इसलिये कल्पित इनके रोग म मांसाहार गुणकारी भी हाना ना भी अस्मिन् व आन्ध्र उपरान्त तथा कष्टा के अवतार धर्म भगवान् महावीर वसी भा एते कर्मण्य पण्य को स्वीकार करें यह बुद्धिगम्य तथा श्रद्धागम्य नहीं है । (५) उन्हें तो अपनी दृष्ट पर भी ममता नहीं थी । (६) उन्हें यह भी ज्ञान था कि 'म राग म द्युर्गे वा मात घातक है । (७) उन्हें उनका रोग 'मम' के लिये वनस्पतिनिष्पन्न निर्मल तथा प्रासुक अनुभूत औषधि ग्रन्थ प्राप्त भी थी । ऐसी परिस्थिति म श्रमण भगवान् महावीर का मांसाहार ग्रहण करना बड़ा विमर्श नहीं है ।

जिगठ नाथपुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जान बाला प्राण का घातक, राग को प्रकृति के प्रतिकूल तथा अभक्ष्य महापापमूलक वस्तु अपने शिष्य सिंह मुनि द्वारा मगा कर ग्रहण करें, यह बात समझदार व्यक्ति के गल बधापि नहीं उतर सकती ।

(१९) रवनी धात्रिका जी घनाड्य गृहस्थ की स्त्री थी बहुत ही समयसार और बुद्धिमत्ती थी और चारों वस्त धारिणी भी थी । ऐसी उत्कृष्ट धात्रिका ऐसा उच्छिष्ट मांस कैसे खा सकती थी ? रांध कर खाती क्यों रहे ? फिर भगवान् के लिये दे । ये सब बात कत समय हो सकती हैं ?

आ स्वयं रांध वह खाता भी होमी तब वह वस्तुधारिणी कैसे हुई ? मांस खाने वाली देवती एम नामा मांस का आहार दान करने से देव गति प्राप्त करे तथा तीर्थहरनामकम उपाजन करे यह कम सम्भव हो सकता है ? शास्त्रकार ता 'तृतीयोऽग ठाणाग आगम' में वर्त है कि इत सुपात्रदान के प्रभाव म देवता धात्रिका देवगति में गयी और आगामी जीवीमा म मनुष्यजन्म पावर इम की आमा तीर्थकर हो कर निर्वाण (मर्त्त) पद प्राप्त करगी । अत इधर यह स्पष्ट है कि सम्मानन पूर्वक बारह वस्त धारिणी धात्रिका न तो कल्पि प्राप्यग मात पवा सकती



गद्य अनवयव बन जाते हैं तथा अनवयव एकार्थक बन जाते हैं। अनवयव गद्यों तथा लिपियों में एक-दूसरे परिवर्तन भी हो जाता है। जो गद्य आज किसी विषय अथवा मर्म प्रयुक्त होता है वह शब्द कालांतर में सरसा भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होन सक्ता है। या आज में पञ्चमीय सौ वर्ष पञ्चमयण्य में बाली जात वाता भाषा आज की भाषा से मेल करने पा सकती है। अन-गुप्त एक निष्ठा विद्वानों को चाहिये कि वे किसी भी सूत्र पाठ का अर्थ करते समय देश का न परिस्थिति आचार विचार आदि को ध्यान में रखते हुए उसका अनुकूल अर्थ करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें। यही उन के लिये गोभाग्य है। किन्तु प्राचीन वाक्य के एकार्थक शब्दों का अनवयव बना कर अर्थ का अर्थ करने की कृपा न करें।

( २२ ) समस्त समय में विवादास्पद सूत्रपाठों को निवारण का विचार भाठक प्रमाण नहीं होता। कारण यह है कि उस प्राचीन समय के सूत्रपाठों का निवारण दन अथवा उन शब्दों का अर्थ दन में अनागमों की प्राचीनता एक प्रामाणिकता ही सम्पादित हो जायगा। अथवा भगवान् महावीर स्वामी की मौजूदगी में गणधरों द्वारा संचालित विषय गमय प्राचीन आगम जब उन के ९८० वर्ष बाद दण्डिगणि शमामरण के नन्व में लिखित कर पुस्तकारण विषय में उस समय हम हजार वर्ष के अंतर में भाषा गद्यों अथवा अनवयव परिवर्तन भा अवश्य हो चुके थे उस समय प्राचीन ग्रंथों की भूलन भी उग्ये, बाहर से आन वाली अनक जानियों के भारत में आकर बसने तथा उन के शासनकाल में उनकी भाषा राज्यभाषा के रूप में प्रचार पा जान से प्रत्यक्ष भाषा में शब्दों का आदान प्रदान होन से उस समय की भाषाओं में अनक प्रकार के परिवर्तन भा हो चुक था। आज का किसी गुजराती बंगाली आदि भारतीय भाषाओं का अर्थ हम बारहवीं-नरहवीं शताब्दी के भाषाओं में मिलान करते हैं तो इनके अंतर का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार आज से पञ्चवीं सौ वर्ष पहले आम आमयण्य शब्दों का अर्थ प्राच्यम का अर्थ

पक्का मांस किया जाता था परन्तु आज की ज़ील बाल का भावार्थों में  
 आम एक कल का नाम प्रसिद्ध है। यह तो हुई भूतकाल की बातें।  
 बनमात्र का में भी हम देखते हैं कि जिन एक एक का जिन अर्थ  
 पत्राक्ष में एक प्रकार का किया जाता है उनी का अर्थ उत्तर प्रदेश  
 में दूसरी प्रकार का किया जाता है। उदाहरणार्थ 'कुक्कुटी' एक का  
 अर्थ पत्राक्ष में सुग्रीव समझा जाता है और उगार प्रसा के मरठ आदि  
 जिन में मर्द के भूत व अर्थ में इसका प्रयोग होता है तथा मारवाड़  
 में इसका प्रयोग कई के काल में भूत की कुक्कुटी के लिए होता है। इन  
 सब बातों का विचार करने में यह स्पष्ट है कि बन्धी में प्राचीन जन  
 भाषाओं को पुनर्जागरित करने समय में भाषा के बन्धी की समस्या  
 उन भाषा निपटारे में न मुक्त अवस्था थी। यदि वे चाहते तो इन भूत  
 पाठों का निष्कार अवस्था बन्धी को देने के लिए भी उद्देश्य बना करी नहीं  
 किया? इस के पीछे उनकी बड़ी दार दुष्टि थी। यदि वे इन भूतपाठों  
 का निष्कार अवस्था बन्धी में तो (१) इन भाषाओं का प्राचीनता मान्य हो  
 जाती (२) भगवान् महावीर के शिष्यों की मूल भाषा का अभाव हो  
 जाता। (३) प्राचीन अद्वैतावस्था भाषा का इतिहास स्पष्ट हो जाता  
 इत्यादि अनक दाव आज्ञा पर भी यह समस्या हल में हो पाती क्योंकि  
 यदि उन समय भगवान् महावीर के एक हजार वर्ष के बाद भाषा तथा  
 शास्त्र के अर्थों में कुछ परिवर्तन हो चुका था तो त भाषा में के पुनर्जागरित  
 होने के पश्चात् भी वह भाषा आज तक भाषा और उन शिष्यों के अर्थों में  
 कोई भी परिवर्तन नहीं हुए। एही परिस्थिति में फिर भी बनी ही समस्या  
 पड़ी रहती और अनक भूत पाठों का आज भी बन्धी की आवश्यकता  
 पड़ती और अविध्य में फिर अनक दावा के अर्थ बदलने रहने के कारण  
 यह समस्या बनी की बना ही बनी रहती बार-बार भूत पाठों के बदलने  
 में प्राचीन जनागम का अस्तित्व ही न रह पाता। इसमें यही उचित है  
 कि बनमात्र में विद्वानों के सामने जो विचारस्थ भूतपाठ हैं उनका अब  
 निपट (जने) आधार विचारों तथा प्राचीन भाषा के अर्थों के अनुकूल

एक अनैकाग्रिक बन जाते हैं तथा अनैकाग्रिक एकाग्रिक बन जाते हैं। अनैकाग्रिक शक्तियों तथा लिपियों में एक-दूसरे परिवर्तन भी हो जाता है। जो शक्ति आज किसी विभाग अथवा प्रयुक्त होता है वह शक्ति बालांतर में मरणाभिन्न अवस्था में प्रयुक्त होन लगता है। सो आज से पञ्चीस सौ वर्ष पहले मगधदेश में बाली जान वाली भाषा आज की भाषा से मेल कैसे पा सकती है। अतः मुन एव निष्पन्न विद्वानों को चाहिये कि वे किसी भी सूत्र पाठ का अध्ययन करने समय देश-काल-परिस्थिति-आचार-विचार आदि का लक्ष्य में रखते हुए उन के अनुकूल अर्थ करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें। यही उन के लिये गोमात्र है। किन्तु प्राचीन काल के एकाग्रिक शक्तियों को अनैकाग्रिक बना कर अर्थ का अन्वय करने की कृपा न करें।

( २२ ) वर्तमान समय में विवादोत्पन्न सूत्रपाठों को निबालन का विचार भा ठाक प्रतीत नही होता। कारण यह है कि उस प्राचीन समय के सूत्रपाठों का निबालन इन अवस्था में न हो सके कि वे देश-काल-परिवर्तन से जड़-गम्य हो जायें। अथवा मगध-महावीर-स्वामी की मौजूदगी में मगध-राज-द्वारा मगध-लिपि में लिखे गये वे प्राचीन आगम जब उन के ९८० वर्ष बाद दक्षिण-गण-द्वारा मगध-लिपि में लिखे गये वे पुस्तकालय में लिखे गये वे उस समय इस प्रकार के अन्तर में भाषा, शक्ति अर्थों के अन्तर्विध परिवर्तन का अवश्य हो चुके थे, उस समय प्राचीन अर्थों की भूलन भा-गम से, बाहर से जान वाली अन्तर्-गतिपा के भारत में आकर उस तथा उन के शासनकाल में इसी भाषा-राज्यभाषा के रूप में प्रचार पा जान से प्रत्यक्ष भाषा में शक्तियों का आदान-प्रदान होने से उस समय की भाषाओं में अनेक प्रकार के परिवर्तन भी हो चुके थे। आज की हिन्दी-गुजराती-बंगाली आदि भारतीय भाषाओं का जब हम चार-बी-चर-बी-शताब्दी की भाषाओं से मिलान करते हैं तो इनके अन्तर का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार आज से पञ्चीस सौ वर्ष पहले आम-आम-वर्ग-का अर्थ-प्राप्त्यर्थ का अर्थ-प्राप्त्यर्थ

पक्का मोस किया जाता था परन्तु आज की बाल बाल की भाषाओं में  
 आम' एक फल का नाम प्रसिद्ध है। यह तो हुई भूतकाल की बातें।  
 वनमान का म भी हम देखते हैं कि जिस एक 'म' का विषय अर्थ  
 पत्राक्ष में एक प्रकार का किया जाता है उसी 'म' का अर्थ उपर प्रश्न  
 में दूसरी प्रकार का किया जाता है। उदाहरणार्थ 'मुक्तुसी' म का  
 अर्थ पत्राक्ष में मुर्गी समझा जाता है और उत्तर प्रश्न के मरु भाषि  
 जिनमें 'मर्क' क मरु के अर्थ में इसका प्रयोग होता है तथा मारवाड  
 में इसका प्रयोग रुई के बाने में सूत की गुच्छी के लिये होता है। इन  
 सब बातों का विचार करने में यह स्पष्ट है कि कलभी में प्राचीन जन  
 जागृता को पुनर्जागरित करने समय में भारादिक बाल्य की समस्या  
 उन भाषा निग्रहों में मुख्य अवश्य थी। यदि वे भाषा तो इन सूत्र  
 पाठों का निबाल अथवा बाल भाषा देखें फिर भाषा का क्या नहीं  
 किया? हम के पाठों उनकी वही दीर्घ दृष्टि था। यदि वे इन सूत्रपाठों  
 का निबाल अथवा बाल देखें तो (१) इन भाषाओं की प्राचीनता स्पष्ट हो  
 जाती (२) भगवान् मन्वीर के गणधरा की मूल भाषा का अभाव हो  
 जाता। (३) प्राचीन अजभाषी भाषा का इतिहास स्पष्ट हो जाता  
 इत्यादि अनन्त आकाश पर भी यह सम्स्या हल में हो पाता, क्योंकि  
 यदि हम समय भगवान् मन्वीर के एक हजार वर्ष के बाद भाषा तथा  
 भाषा के अर्थों में कुछ परिवर्तन हुआ या तो म भाषाओं के पुस्तकारों  
 हान के बाद भी वह भाषा आज तक मायाया और उन भाषा के अर्थों में  
 कोई भी परिवर्तन नहीं हुए। ऐसी परिस्थिति में फिर भी वही ही समस्या  
 बनी रहती और अनन्त सूत्र पाठों का आज भी बाल्य की आवश्यकता  
 पड़ती और भविष्य में फिर अनन्त भाषा के अर्थ बाल्य रहने के कारण  
 यह समस्या बनी का वही ही बना रहती बार बार सूत्र पाठों के बालने  
 में प्राचीन जनायता का अस्तित्व ही न रह पाता। इसलिये यही उचित है  
 कि वनमान में विद्वानों के सामने जो विवादास्पद सूत्रपाठ हैं उनका अर्थ  
 निग्रह (जन) आधार विचारों तथा प्राचीन भाषा के अर्थों के अनुसार

अथ गरके मुन विद्वान अपन कनव्य का पालन करें । सारास यह है कि सूत्र-पाठा का विपरीताय करन से बहुत बात विपरात हो जाती है । किसी बात का समाधान होना तो दूर रह जाता है परन्तु कई प्रकार की उलझनें उपस्थित हो जाती हैं । भगवतोसूत्र के इस विवादास्पद सूत्रपाठ का विपरीताय करके अध्यापक कासाम्बी जी पटल गोपालनाथ तथा उन का अनुयायी विद्वाना न अपनी विद्वता को बट्टा लगाया है । क्योंकि भगवान महावीर के राग में ला जान वाली औदध का भासपरक अथ चिन्तिमा शास्त्र निग्रय आचार विचार धर्मण भगवान मन्वावीर की जावनवया समय, परिस्थिति आदि सब के प्रतिकूल है । अधिष क्या लिखें ? ।

इन विवेचना से विद्वान पाठगण समझ सकयें कि इस सूत्रपाठ का चलमान वालीन अथ करके गोपालनाथ पटल तथा अध्यापक धर्मानाथ कासाम्बी ने कसी अक्ष तय भूल की है ? ।

अत भारत सरकार की साहित्य एकादमी को चाहिये कि वह कोसाम्बीवृत्त 'भगवान बुद्ध' नामक पुस्तक को सन्ध के गिये अगाति-जनक पावित कर जप्त करें । इसी में भारतसरकार का प्रतिष्ठा निहित है । मुनपु कि बहुना ।

